आधुनिक पंजाबी कहानियां

संकलनकर्ता

अजीत कौर

सम्पादन

रमेश नारायण तिवारी

बलदेव सिंह मदान

विभा जोशी

प्रकाशन विभाग

सूचना और प्रसारण मन्त्रालय

भारत सरकार

फाल्गुन 1906 (फरवरी 1984)

मूल्य रु० 11 00

निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस नई दिल्ली 110001 द्वारा प्रकाशित

विक्रय केन्द्र ● प्रकाशन विभाग

● सुपर बाजार (दूसरा मंजिल) कनाट सकस, नई दिल्ली 110001

● कामर्स हाउस, करीमभाई रोड बलार्ड पायर, बम्बई-400038

● 8 एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता 700069

● एल० एल० आडाटोरियम, 736 अन्नासलै मद्रास 600002

● बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना 800004

● निकट गवर्नमेंट प्रेस, प्रेस रोड, त्रिवेन्द्रम 695001

● 10 बी०, स्टेशन रोड, लखनऊ-226004

● स्टेट आर्किलाजिकल म्यूजियम बिल्डिंग पब्लिक गार्डन, हैदराबाद 500004

भारत सरकार मुद्रणालय नासिक 422006 द्वारा मुद्रित।

विषय सूची

पृष्ठ

8

अमृता प्रीतम

शाह की कंजरी

उसे अब नीलम कोई नही कहता था, सब शाह की कजरी कहते थे

लाहौर की हीरामडी के एक चौबारे मे नीलम पर जवानी आयी थी, और वहा ही एक रियासती सरदार के हाथो पूरे पाच हज़ार पर उसकी नथ उतरी थी और वहीं उसकी सुन्दरता की आग ने शहर को झुलस दिया था। लेकिन फिर एक दिन वह हीरामडी का सस्ता चौबारा छोड कर शहर के सबसे महगे होटल "फ्लेटटीज़" मे आ गयी थी। वही शहर था, लेकिन सारा शहर जसे रातो रात उसका नाम भल गया हो, सबके मुह पर था—शाह की कजरी।

वह गज़ब का गाती थी। कोई भी गायिका उस जैसा "मिर्ज़ा" का क़िस्सा नही गा सकती थी। इसलिए लोग भले ही उसका नाम भूल गये हो, उसकी आवाज़ नही भूले थे। शहर मे जिसके घर मे भी तवे वाला बाजा था, वह उसके भरे हुए तवे ज़रूर खरीदता था। सारे घरो मे तवे की फरमाइश के समय हर कोई यही कहता था "आज शाह की कजरी वाला तवा ज़रूर सुनेंगे।"

लुकी छिपी बात नही थी। शाह के घर वाले भी जानते थे। सिफ जानते ही नही थे, उनके लिए यह बात पुरानी हो गयी थी। शाह का बडा लडका, जो अब विवाह योग्य था, जब गोदी मे था तब सेठानी ने ज़हर खा कर मरने की धमकी दी थी पर शाह न उसके गले मे मोतियो का हार पहना कर उससे कहा था—"शाहनी! वह तेरे घर की बरकत है। मेरी आख जौहरी की आख है। तुमने क्या नही सुना कि नीलम एक ऐसी चीज़ है जो लाख को राख कर देता है और राख को लाख। जिसे उलटा पड जाए उसके लाख को राख कर देता है, पर जिसे सीधा पड जाये, उसकी राख को लाख कर देता है। वह भी नीलम है, हमारी राशि से मिल गयी है। सो जिस दिन से मेरा इसका साथ हुआ है मैं मिट्टी मे हाथ डालू तो सोना हो जाती है

"पर वही एक दिन घर उजाड देगी, लाखो को राख कर देगी।" शाहनी ने छाती के घाव का सहन करते हुए उसी ओर से दलील दी थी जिस ओर से शाह ने बात चलायी थी।

"मैं तो बल्कि डरता हू कि इन कजरियो का क्या भरोसा। कल को किसी और ने सब्ज बाग दिखाए और यह हाथ से निकल गयी तो लाख राख हो जाएगा", शाह ने दलील दी थी।

शाहनी के पास और दलील नहीं रह गयी थी, केवल समय ले के पास रह गयी थी और समय चुप था, कई बरस से चुप था। शाह सचमुच जितना धन नीलम पर लुटाता था उससे कई गुना अधिक न जाने कहा कहा से बहता हुआ उस के पास आ जाता था। पहले, उसकी छोटी-सी दुकान शहर के छोटे-से बाजार म थी पर अब सब से बडे बाजार म लोहे के जगले वाली सबसे बडी दुकान उसी की थी। घर की जगह पूरा मोहल्ला ही उसका था जिसम बडे खाते-पीते किराये-दार रहते थे और जिसम तहखाने वाले घर को, उसको शाहनी, कभी एक दिन भी अकेला नही छोडती थी।

बहुत बरस हुए शाहनी ने मोहरो वाले ट्रक पर ताला लगाते हुए शाह से कहा था—'उसे चाहे होटल मे रखो, चाहे उसके लिए ताजमहल बनवाओ पर बाहर की बला बाहर ही रखना उसे मेरे घर म मत लाना। मैं उसका मुह नही देखना चाहती।' और सचमुच शाहनी ने आज तक उसका मुह नही देखा था। जब उसने यह बात कही थी उसका बडा बेटा अभी स्कूल मे पढता था, और अब वह विवाह योग्य हो गया था। पर शाहनी ने न उसके गाना वाले तवे घर म घुसने दिए थे, और न घर मे किसी को उसका नाम लेने दिया था। वसे उसके बेटो ने जगह-जगह दुकानो पर उसके गाने सुने थे, और हर किसी के मुह से सुना था—'शाह की कजरी।'

बडे बेटे का विवाह था। घर पर चार महीने से दर्जी बैठे हुए थे—कोई सूटो पर सलमे का कढाई कर रहा था कोई तिल्ला कोई किनारी टाक रहा था, और कोई दुपट्टा पर सितारे जड रहा था। शाहनी के हाथ भरे हुए थे रुपयो की थैली निकालती, खोलती और फिर और थैली भरने के लिए तहखाने म चली जाती।

शाह के यारा ने, शाह को यारी का वास्ता दिया—कि लडके के विवाह में कजरी जरूर गाएगी। वैसे बात उन्होंने बडे ढग से कही थी ताकि शाह कही नाराज न हो जाए "वैसे तो शाहजी! नाचने गाने वाली बहुत हैं, जिसे चाहें बुलायें, पर वहा मनकाए नरतुम को जरूर आना चाहिए भले ही "मिर्जा" की सिफ एक आवाज लग जाए।"

फेनेटटीज होटल आम होटलो जैसा नही था। वहा अधिकाश अग्रेज लोग ही आते और ठहरते थे। उसमे एक कमरा भी मिलता था, और बडे-बडे तीन कमरा के सैट भी। ऐसे ही एक सैट मे नीलम रहती थी और शाह ने सोचा कि दोस्तो-यारो का दिल खुश करने के लिए वह एक दिन नीलम के यहा एक रात की महफिल रख लेगा।

"यह तो चौवारे पर जाने वाली बात हुई" एक ने आपत्ति की तो सब बोल उठे "नही, शाहजी! वह तो सिफ आपका ही हक है। इतने बरसो से हमने कभी पहले कुछ कहा है? उस जगह का नाम भी कभी नही लिया। वह जगह आपकी अमानत है। हमे तो भतीजे के ब्याह की खशी करनी है, उसे खानदानी घरो की तरह अपने घर बुलाए हमारी भाभी के घर "

बात शाह को जच गयी। इस वजह से भी कि वह दोस्तो-यारो को नीलम का रास्ता नही दिखाना चाहता था। (भले ही उसके कान मे भनक पडती रहती थी कि उसकी गैर-हाजरी मे अब कोई कोई अमीरज़ादा नीलम के पास आने लगा था)—और इस वजह से भी कि वह चाहता था कि नीलम एक बार उसके घर आ कर उसके घर की तडक भडक देख जाए। पर वह शाहनी से डरता था, दोस्तो से हामी नही भर सका।

दोस्तो-यारो मे से ही दो ने रास्ता निकाला और शाहनी के पास जा कर बोले "भाभी! आप बेटे के ब्याह पर गाना नही बिठाएगी? हमे तो पूर खशी करनी है। शाह की सलाह है कि एक रात यारा की महफिल नीलम के यहा हो जाए। बात तो ठीक है पर हजारा उजड जाएगे। आखिर घर तो आपका है, क्या पहले ही उस कजरी को कम खिला चुके हैं? आप सयानी बनें उसे गाने-बजाने के लिए यहा बुला लें एक दिन। बेटे के ब्याह की खुशी भी हो जाएगी और रुपया उजडने से बच जाएगा।"

शाहनी पहले तो गुस्से मे भर कर बोली, "मैं उस कजरी का मुह नही देखना चाहती।" पर जब शाह के दोस्तो ने हलीमी से कहा 'यहा तो भाभी, आपका राज है वह बादी बन कर आएगी, आप के हुक्म मे बधी। आपके बेटे की खुशी करने के लिए। हेठी तो उसकी है, आपकी कम है ? जैसे कम्मी-कमीन आएगे, डोम-मीरासी—वैसे ही वह ।"

बात शाहनी की समझ मे आ गयी। वैसे भी कभी उठते-बठते उसे ख्याल आ जाया करता था—एक बार देखू तो सही कैसी है। उसने उसे कभी नही देखा था, पर उसकी कल्पना जरूर की थी—भले ही डर कर सहम कर और भले ही नफरत से। और शहर से गुजरते हुए अगर किसी कजरी को वह टागे मे बैठे हुए देख लेती तो न सोचना चाहते हुए भी सोच जाती—कौन जाने वही हो ?

'चलो, मैं भी एक बार देख ही लू", बात उसके मन मे घुल-सी गयी, "मेरा जो उसे बिगाडना था वह उसने बिगाड लिया, अब और वह क्या कर लेगी। एक बार कम्बख्त को देख तो लू ।"

और शाहनी ने हामी भर दी, पर एक शर्त लगा दी। 'यहा न शराब उडेगी न कबाब। भले घरो मे जैसे गाना बठाते हैं वैसे ही गाना बैठाऊगी। आप मद लोग भी बठ जाना। वह आए, और सीधी तरह से गा कर चली जाए। मैं यहीं चार बताशे उसके पल्ले मे डाल दूगी जो घोडी-बन्ने गाने वाली लडकी-वालियो को दूगी।"

"यही तो, भाभी! हम कह रहे हैं।" शाह के दोस्तो ने उसे फुलाने के लिए कहा, 'आप के सयानेपन से ही तो घर बना हुआ है, नही तो न जाने क्या हालत हो जाती ।"

वह आयी। शाहनी ने अपनी बग्घी भेजी थी। घर रिश्तेदारो-दोस्तो से भरा हुआ था। बडे कमरे मे सफेद चादरे बिछा कर बीचोबीच ढोलक रखी हुई थी। घर की औरतो ने घोडिया छेड रक्खी थी।

बग्घी दरवाजे पर आ कर रुक गयी तो रिश्तेदार औरतें, जिन्हें उसे देखने की बडी जल्दी लगी हुई थी दौड कर खिडकिया म चली गयी और कुछ सीढिया की ओर ।

'अरे, बदशगुनी क्यो करती हो, घाडी बीच मे ही छोड दी।' शाहनी न डपट कर कहा। पर अपनी आवाज़ उसे खुद ही नरम सी लगी जसे उसके दिल म एक धमक पडी हो

वह सीढिया चढ कर दरवाज़े तक आ गई थी। शाहनी ने अपनी गुलाबी साडी का पल्ला सीधा किया जसे सामने देखने के लिए वह शगुना वाले गुलाबी रग का सहारा ले रही हो

सामने—उसने हरे रग का वाकडे वाला गरारा पहना हुआ था, लाल रग की कमीज़ थी और सिर से पैर तक ढलकी हुई हरे रेशम की चुनरी। एक झिल मिल-सी हुई। शाहनी को एक पल के लिए सिफ यह लगा—जसे हरा रग सारे दरवाज़े म फल गया है

फिर काच की चूडिया की छन छन हुई तो शाहनी ने देखा—एक गोरा-गोरा हाथ एक झुके हुए माथे से छूकर उसे सलाम-दुआ-सा कुछ कह रहा है और साथ ही एक खनकती-सी आवाज़—"बहुत बहुत मुबारक शाहनी। बहुत बहुत मुबारक।"

वह बडी नाज़ुक-सी थी, पतली-सी। हाथ लगात ही छुई-मुई हो जान वाली। शाहनी ने उसे एक गाव-तकिये की ओर हाथ से इशारा करके बैठने क लिए कहा, तो शाहनी को लगा कि उसकी अपनी मासल बाह बहुत ही भददी लग रही है

कमरे मे एक कोने म—शाह भी था, उसके मित्र भी थे, कुछ रिश्तदार मद भी मौजूद थे। उम मुवुक्-सी ने उस काने की ओर देख कर भी एक बार सलाम किया और फिर परे गाव-तकिये क पास ठुमक कर बैठ गयी। बठने हुए उसकी काच की चूडिया फिर खनकी थी। शाहनी ने फिर एक बार उसकी बाहो की आर दखा, हरी काच की चूडिया का, और फिर अपनी बाहा म पडे हुए सोने क चूडे की ओर देखने लगी।

कमरे म एक चकाचौंध-सी छा गयी। सबकी आखें जैस एक ही दिशा म उठ गयी हा, शाहनी की अपनी भी। पर उसे अपनी आखा के अलावा और सारी आखा पर एक क्रोध-सा आ गया वह फिर एक बार कहना चाहती थी—अर, बदशगुनी क्या करती हो? घाडिया गाओ न पर उसकी

आवाज उसके गले में ही रुक गयी। शायद औरों की आवाजें भी रुक गयी थीं। कमरे में एक चुप्पी छा गयी। वह कमरे के बीच में पड़ी हुई ढोलक की ओर देखने लगी और उसका जी किया वह बहुत जोर से ढोलक बजाए

चुप्पी उसी ने तोड़ी जिसके कारण चुप्पी छायी हुई थी। बोली "मैं तो सबसे पहले घोड़ी गाऊंगी, लड़के का शगुन करूंगी, क्यों शाहनी ?" और शाहनी की ओर देख कर हसते हुए उसने घोड़ी छेड़ दी 'निक्की निक्की बूंदी निकिया मेंह वे वरहे तेरी मां वे सुहागण तेरे शगण करे '

शाहनी में अचानक एक स्थिरता-सी आ गयी—शायद इसलिए कि गीत की 'मां' वही है और उसका मद भी सिर्फ उसी का मद है—तभी तो मां सुहागिन है

शाहनी हसते हुए चेहरे से, उसके ठीक सामने बैठ गयी जो इस समय उसके बेटे के शगुन गा रही थी

घोड़ी खतम हुई तो कमरे की बोलचाल लौट आयी—फिर सब कुछ स्वाभाविक हो गया। औरतों की ओर से फरमाइश आयी—'ढोलकी रोड़े वाला गीत"—और मर्दों की ओर से फरमाइश आयी—"मिर्जा" 'मिर्जा"

गाने वाली ने मर्दों की ओर से आयी हुई फरमाइश सुनी-अनसुनी कर दी और ढोलक अपनी ओर खींच कर उसने ढोलक से अपना घुटना सटा लिया। शाहनी कुछ रौ में आ गयी—शायद इसलिए कि गाने वाली मर्दों की फरमाइश पूरी करने के बजाय औरतों की ओर से की गयी फरमाइश पूरी करने जा रही थी

आयी हुई बिरादरी की औरतों में शायद कुछ को मालूम नहीं था वह एक दूसरे से कुछ पूछ रही थीं और कई उनके कान के पास कह रही थीं—'वही है यह शाह की कंजरी "। कहने वाली औरतों ने चाहे बहुत हौले से कहा था—खुसर-फुसर सा, पर शाहनी के कानों में आवाज पड़ रही थी, उसके कानों से टकरा रही थी—शाह की कंजरी शाह की कंजरी और शाहनी के चेहरे का रंग फिर उड़ गया

इतने म ढालक की आवाज ऊची हा गयी और साय ही गाने वाली का आवाज भी, "सूहे व चीरे वानिया मैं कहनी आ " और शाहनी का कलेजा थम-सा गया—यह लाल पगडी वाला मेरा ही बेटा है, खैर से आज घोडी चढने वाला मेरा बेटा ?

फरमाइशा का अन्त नही था। एक गीत खतम होता दूसरा शुरू होता। गाने वाली कभी औरता की फरमाइश पूरी करती कभी मर्दों की। बीच बीच मे वह उठती 'बाई और भी गाइए न मुझे सास ले लेन दीजिए।" पर किसी की हिम्मत थी उसके सामने पडन की, उसकी घटी जमी आवाज हूक जसी आवाज थी। वह भी शायद कहने को कह रही थी, वैस एक गीत क वाद तुरन्त दूसरा छेड देती थी।

गीता की वात और थी पर जब उसने "मिर्जा' की हाक लगायी—"उठ नी साहिबा सुत्तिए उठ के देह दीदार " हवा का कलेजा हिल गया। कमर मे बठे हुए मद बुत बन गए। शाहनी को फिर एक घबराहट-सी हुई उसने एकटक शाह के चेहरे की ओर देखा। शाह भी और बुता जैसा बुत बना हुआ था, पर शाहनी को लगा—वह पत्थर का हो गया है

शाहनी के कलेजे म हौल पडी और उसे लगा अगर अब की यह घडी निकल गयी तो वह स्वय भी सदा के लिए मिट्टी की बुत बन जाएगी वह करे, कुछ करे, कुछ भी करे पर मिट्टी का बुत न बने

शाम गहरी हो चली महफिल खतम होने को आ गयी

शाहनी का कहना था कि वह आज उसी तरह केवल बताशे बाटेगी जिस तरह लोग उस दिन बाटते ह जिस दिन गाना बिठाते हैं। पर जब गाना खतम हुआ तब कमरे म चाय और कई तरह की मिठाई आ गयी और शाहनी ने मुट्ठी म तह किया हुआ सौ का नोट निकाल कर अपने बेटे के सिर पर वारफेर की और फिर वह नोट उसे थमा दिया जिसे लोग शाह की कजरी कहते थे।

"रहने दो शाहनी! सदा से तुम्हारा ही खा रही हू।' उसने कहा और हस पडी। उसकी हसी उसके रूप की तरह झिलमिला रही थी।

शाहनी के चेहरे का रग उड गया। उसे लगा जस शाह की कजरी ने आज भरी सभा म शाह से अपना नाता जोड कर उसका अपमान कर दिया है। पर

शाहनी न अपने आपको सभाल लिया एक साहस-सा किया कि आज वह हार नही मानेगी—और वह ज़ोर स हस पडी। नाट फिर थमाते हुए बोली, "शाह से तुम्हें नित लेना है पर मुझसे तुम फिर कब लोगी? चलो आज ले लो "

और शाह की कजरा सौ के उस नोट को हाथ म लेते हुए एकाएकी तुच्छ-सी हो गयी

कमर म शाहनी की साडी का शगुना वाला गुलाबी रग फैल गया

नवतेज सिंह

कोट और मनुष्य

घर मे रजाइया सिर्फ तीन ही थी—वह भी पुरानी फटी हुई सी, और ऊपर से बला की ठड पड रही थी। रोज बीच वाले भाई बहन एक रजाई में सोते, सबसे बडी सीतो और सबसे छोटी मुन्नी दूसरी मे और तीसरी म उनका पिता मास्टर ईशर दास। उनकी मा भागवती खेस जोड-जाड कर, दरी ऊपर लेकर कुछ जोड-तोड कर लेती थी। पर कुछ दिनो से लगातार रात को ठड लगने के कारण सारे सारे दिन उसका शरीर टूटता रहता था और उसका हिलने तक को जी नही करता था।

छोटे तीन तो सो गए थे, पर बडी सीतो जाग रही थी। उसे खासी उठी हुई थी ऊपर का सास ऊपर, और नीचे का सास नीचे। यह नामुराद खासी बहुत समय से इस तरुण अवस्था म भी उसका पीछा नही छोड रही थी। पूरे दो बरस से खासी-जुकाम का यमदूत उससे चिपटा हुआ था।

एक बार मास्टर ईशर दास ने अपने किसी शागिर्द के डाक्टर पिता से बिना फ़ीस सीतो का मुआयना कराया था। डाक्टर ने बताया था "इसके गले का आपरेशन बहुत ही जरूरी है—अगर और कुछ देर इस तरह गफलत की तो इसे कानो से कम सुनाई देने लगेगा और इसके दिल पर भी असर पडेगा।" डाक्टर ने सीतो को रोज दूध, अडे, पत्ते वाली सब्ज़िया, फल, और विटामिन की गोलिया खाने के लिए कहा था।

पर सीतो दो बरस से इसी तरह खास रही थी। बनफशे के अतिरिक्त वह उसके लिए और कोई दवा नही ला सका था। आपरेशन, हर रोज दूध, अडे, फल दो बरस से। और तो और वह अपने सत्तर रुपये मासिक वेतन मे घर के लिए एक रजाई भी मोल नही ले सका था।

"सीतो सीतो।"

सीतो ने सुना नही, शायद खासी के कारण।

डाक्टर ने कहा था 'अगर गले का आपरेशन जल्दी न हुआ तो इसके कानो मे भी कसर हो जाएगी "

सीतो की मा चौका बतन निबटा कर आ गई और अपनी चारपाई पर फटे पुराने खेसो और दरियो को जोडने लगी।

सीतो की मा! आज तुम मेरी रजाई ले लो और मैं खेसा मे सो जाऊगा।"

'नही जी! मैं तो सारे दिन घर मे धूप सेंकती रहती हू और आप सवेरे तडके इन तीन कपडो से इतना फासला तय करके दूसरे गाव मे पढाने जाते है और फिर स्कल से भी आगे राय साहब के वगले से टयूशन पढा कर कही देर साझ को लौटते हैं। अगर रात को भी आपको थोडा-सा रजाई का आराम न मिला, तो सवेरे कैसे इस कठिन रिजक की चक्की को पीसेंगे ?

भागवती आज सारे दिन ठड म बच्चो के कपडे और जो भी बुरे भले बिस्तरे घर मे थे, उन्हें धोती रही थी और अब उसका जोड जोड दुख रहा था, पर फिर भी वह बारी-बारी अपने हर बच्चे के ऊपर साये की रजाइया ठीक-ठाक करने लगी।

"तीन कपडा से' और मास्टर ईशर दास को अपनी रजाई म भी *कपकपी आने लगी। सवेरे तडके वह तीन कोस चल कर अपनी नौकरी पर पहुचता* था। कितने ही बरसो से उसके पास कोट नही था, स्वेटर भी नही था। स्कूल पहुच कर पहले घटे मे वह हाजरी लगाने के लिए कलम भी अपनी उगलियो से नही पकड सकता था। पहले तो शाम को वह समय से लौटने के कारण ठड से बच जाता था पर अब उसने सौ सिफारिशें भिजवा कर राय साहब के पुत्र की ट्यूशन ले ली थी। स्कूल से छुट्टी होने के बाद एक कोस की दूरी पर राय साहब के बगले मे रायजादे को पढाने जाता था और वहा पहुचने पर रायजादा कौन-सा पहले से पढने के लिए तैयार बठा होता था। कभी वह फुसत से चाय पी रहा होता, कभी उसके लिए कोई खास पकवान बन रहा होता और उसे खाने के बाद ही कही वह मास्टर के पास आता। सो, यद्यपि रायजादे को एक घटे ही पढ़ाना होता था, पर पूरे दो घटे उसे राय साहब के बगले म रहना पडता था। इस दो कोस के चक्कर दो घटे की मायापच्ची और रात पडे लौटने हुए फिर

सवेरे की तरह दात किटकिटाने का मूल्य उसे पन्द्रह रुपये मासिक मिलता था—और यह ट्यूशन सिर्फ तीन महीने के लिए थी। पन्द्रह तिये पैंतालिस। एक रजाई आखिर बन जाएगी सीतो की मा के लिए और सीतो के आपरेशन की फीस भी शायद निकल आए। भाच तक, डाक्टर ने कहा था और सीतो के लिए एक पाव दूध।

भागवती ने अपनी चारपाई पर लेटते हुए कहा "अब जब टयशन के पैसे आए तो मुझे उन ला देना। मैं आपको एक स्वटर ही बुन दू। इतनी ठड तीन कपडो मे ही काट रहे हो। ईश्वर न करे, कही कोई हरज-मरज हो गई ।" भागवती अपने बर्फ-जैसे बिस्तर पर गुच्छा-मुच्छा बनी काप रही थी और कपकपी उसकी आवाज मे भी थी।

"मुझे स्वेटर नही चाहिए, मैं आज एक कोट ले आया हू।"

"कहा है कोट ? मुझे तो आपने दिखाया ही नही। और ले कैसे लिया ? अभी तो न तनखाह मिली है, न ट्यूशन के पैसे।"

सीतो को फिर खासी ज़ोर से उठ गई थी। भागवती उसकी चारपाई पर उसकी छाती मलने चल। गई।

मास्टर ईशर दास ने कोट अपने घर के किसी प्राणी को नही दिखाया था। अगर वह कोट पहन कर घर आ जाता तो भागवती और सीतो के सिवा उसे और कोई शायद पहचानता भी नही। तीनो छोटे बच्चो को जबसे कुछ होश आया था तबसे ही उन्होंने उसके पास कोट कभी नही देखा था। अपने विवाह पर उसने एक गरम कोट सिलवाया था जो कितने ही बरस चला था। पर जबस देश आज़ाद हुआ था और वह लोग पाकिस्तान से इधर आए थे, वह गरम कोट पाकिस्तान मे ही रह गया था—और उसके बाद नया कोट नही बन सका था—और आज वह कोट ले आया था—पर उसने यह कोट अपनी पत्नी को नही दिखाया था।

जो कोट पाकिस्तान मे रह गया था, उसके विवाह का कोट, उस के बायी ओर के कालर के पास शौकीन शहरी दर्ज़ी न फूल लगाने के लिए जगह बनाई थी। विवाह के कुछ दिनो के बाद ही उसकी पत्नी न उसम एक फूल लगा कर उससे पूछा था—"इस फूल का नाम जानत हो ?" उसने जानते हुए

भी नहीं मे सिर हिला दिया था और तरुणी भागवती ने एक अदा से कहा था "इश्कपेचा "। कैसी लाली थी वह जिसकी लहर तब उस समय उसके गाला पर फिर गई थी इश्क़पेचा, इश्कपेचा।

और कोट आज मास्टर ईशर दास ने भागवती को नही दिखाया था। अगले दिन से वह स्कूल से लौटते हुए सारे रास्ते यह कोट पहन कर आता था, पर घर की ओर मुडने वाली गली से पहले ही इसे उतार कर पुराने अखबार में लपेट लेता था और घर मे प्रवेश करते ही आख बचा कर छिपा देता था क्योंकि यह कोट उसने सिलवाया नही था—माग कर लिया था।

जब वह छुटपन म स्कूल मे पढता था, उसके पिता ने उसे एक कहानी सुनाई थी— एक लडके ने किसी से पुरानी किताबें माग कर पढाई शुरू की तो उसे तपदिक हो गई। पुरानी किताबो म पुराने बीमार मालिक के तपेदिक के जर्रे पडे हुए थे।" और छुटपन मे ईशर दास ने जब एक बार अपने पडोस के एक लडके से माग कर कुछ मिठाई खाई थी तो उसके पिता ने पहले उसके दो थप्पड मार थे और फिर मिठाई का थाल मगाकर उसके सामने रख कर कहा था "खा ले जो भी जी करता है! पर खबरदार, जो कभी किसी से माग कर कुछ लिया।"

और यह गरम कोट उसने कल माग कर लिया था।

सीतो की खासी कुछ मद पडी। भागवती ईशर दास की चारपाई पर आ बैठी—"तो दिखाओ भी किस रग का कोट है? उधार ले आए हो कही से?"

नही—मैं तो ऐसे ही तुम्हें झिका रहा था" एक अकथ पीडा से ईशर दास ने कहा "हमारे नसीबा मे कहा है गरम कोट।"

"साईं रक्षा करे, ऐसे ही मत कोसा करो अपन नसीबा को" भागवती ने बहुत दृढ़ता से कहना चाहा किंतु न जाने क्यो उसका रोना छूट गया।

भागवती बडे मजबूत दिल की औरत थी। वह छोटी मोटी बात पर कभी नही रोई थी। पर इस समय न जाने क्यो वह रुलाई नही रोक सकी और उसने अपना सिर अपने पति की छाती पर रख दिया। दोना की छातिया के बीच बहुत पुरानी तप्पड-जैसी रजाई थी और भागवती के गरम-गरम आसू पहले रजाई मे सूखते रहे, फिर मास्टर के हाथो पर गिरते रहे—और वह रोती रही।

मास्टर ईशर दास ने बडी नरमी स अपने बच्चा की मा को अपनी रजाई म कर लिया। नीद के समान ही रुलाइ भागवती का अनायास आती रही। इतने दिना से उसकी हड्डिया म जमी हुई बफ को जैसे यह रुलाई कुछ पिघला रही थी, हाड-तोड घर क काम से दुख रहे उसके अगा को जैसे यह रोना सुखद-सी टकोर किए जा रहा था और वह कितनी ही रजाइया म लिपटी अलसायी पडी थी—और रजाइयो मे रुई नही, धूपें भरी हुई थी

सवेरे तडके स्कूल जाने के लिए जब मास्टर ईशर दास घर स निकला तो पुराने अखबार मे लपेटा हुआ कोट उसने बगल म छिपा रखा था। बहुत ठड थी—तब भी उसने कोट अपनी गली पार करके ही पहना। भले ही मागा हुआ कोट था पर था खूब गरम।

राय साहबनी ने कोट देते समय कहा था— यह राय साहब न विलायत म सिलवाया था।" राय साहब ने कहा था 'अनपढो के लिए सारे मुल्क ही विलायत हैं। यह आस्ट्रिया म सिलाया था मैंने! मास्टरजी। कभी सुना है आपन एक साइकालाजी की साइन्स होती है—आस्ट्रिया म साइकालोजी के बडे-बडे विद्वान रहते हैं।" और राय साहब तब साइकालोजी की एक मोटी-सी किताब ले कर अपन कमरे की ओर चले गये थे।

राय साहबनी एक देवी थी। अगर और कोई देता तो मास्टर को कोट ला का बिलकुल साहस न होता।

परसो शाम झक्कड झझा जसा चल रहा था और वह ठड कि राम राम— साथ ही मास्टर का जी भी ठीक नही था। रायजाद का पढा चुकन क बाद बडी देर तक दहकती अगीठी के सामने स उठन को उसका मन ही नही हुआ। अत म जब वह उठा तो बरामदे म ही उस लगातार कितनी ही छीकें आ गई और फिर एक चक्करसा आ गया।

सयोगवश तभी पास से राय साहबनी गुजरी। उसन पूछा 'क्या बात है, मास्टरजी ?"

'नही, कुछ नही। ऐसे ही ठड-सी लग गई है" जी सभाल कर मास्टर न कहा।

2—144 आई० ऐण्ड बी०/84

"और आपको जाना भी तो है पूरे चार कोस, इस ठड मे। कोई कोट-सोट पहन कर आया करे।"

मास्टर ने पहले राय साहबनी की ओर देखा और फिर आखे चुरा ली और न जाने कैसे उसके मुह से अनायास निकल गया, "कोट ता, माताजी! मेरे पास है नही—और स्वटर भी नही है।"

मास्टर की आखो मे देख कर राय साहबनी काप उठी थी।

इससे पहले कभी मास्टर ने राय साहबनी का माताजी नही कहा था यद्यपि वह कई बार सोचा करता था कि राय साहबनी की सूरत और सीरत दाना ही उसकी अपनी मृत मा से कितनी मिलती थी।

वह उसे एक मा के समान भीतर अगीठी के पास ले गई थी और फिर स्वय उसके लिए चाय मिष्ठान के वास्ते रसोई की आर चली गई थी। कुछ देर अकेला वह अगीठी सेंकता रहा था। फिर एक नौकर उसे गरम गरम चाय और साथ मे कुछ खाने को दे गया था। मास्टर ने बहुत ना नुकर की, पर नौकर न कहा था—'बीबीजी का हुक्म है। और चाय का गिलास उसन अनमने ही हाथ म ले लिया था। चाय पर मलाई की एक मोटी तह तर रही थी।

अभी चाय का गिलास समाप्त हुआ ही था कि राय साहबनी एक गरम कोट ले कर आ गई थी 'मास्टर जी! यह ले लीजिए आप।"

'नही, माताजी! "

माताजी का हुक्म ही समझ ले "

और जैस ड्रिल करत हुए बायें या दायें मुडन का हुक्म सुन कर बिना सोचे मुड जाते हैं, वैसे ही मास्टर ने कोट ले लिया था। वह कुछ भी नही कह सका था धन्यवाद का एक शब्द भी नही।

तभी राय साहब आ गए थे और आस्ट्रिया में कोट सिलवाने का और साइकालोजी का जिक्र हुआ था।

और परसा से यही कोट पहन कर वह घर जा रहा था। कल स यही कोट पहन कर वह घर से आ रहा था। पर घर मे प्रवेश करने से पहले ही वह इस कोट को पुरान अखबार म लपेट कर छिपा लेता था और सवेरे घर के बाहर जा कर पहनता था। स्कूल के और मास्टरो को, जिनमे अधिकाश उसके समान

ही कोट के बिना थे, उसने इस कोट के बारे मे कुछ मन्मुट बतला दिया था। पर भागवती को क्या बताए ? रोज़ वह सोचता, ऐसे समझाए नही, ऐसे समझाए पर अंत मे घर की दहलीज के बाहर ही वह कोट को पुराने अखबार मे लपट लेता और घर जा कर चोरी के माल की तरह छिपा देता था।

कल उसने यह कोट राय साहबनी को लौटा देने का फैसला कर लिया था। पर जब उसने शाम को पढा चुकने के बाद रायजादे से राय साहबनी के बारे मे पूछा तो रायजादे ने बताया था "माताजी मामाजी के पास अमृतसर एक हफ्ते के लिए गई हैं। वह यह कोट माताजी को ही लौटा सकता था—माताजी का हुकम ही समझ लें। —और किसी को तो नही दे सकता था। और अब वह उनके अमृतसर से लौटने की प्रतीक्षा कर रहा था। एक सप्ताह अभी था, इतने दिन बाद कही वह कोट वापस लेने से इनकार न कर दें ? तब वह सीतो की मा को कैसे समझाए ? और एक सप्ताह दोनो समय पुराने अखबार मे छिपा कर

इस कोट ने एक जाल-सा मास्टर ईशर दास के गिर्द बुन दिया था। उसने इस जाल मे से अपने आप को भझोड कर, किसी और तरफ ध्यान लगाने का जतन किया। रायजादे की ट्यूशन शुरू हुए पद्रह दिन हो गए थे और अभी ढाई महीने इस ट्यूशन को और चलना था। पद्रह रुपया मासिक। पद्रह तिये पैतालिस। पूरे पैतालिस रुपये मार्च मे परीक्षाओ के नज़दीक उसे मिल जाएगे। इस बार सीतो का आपरेशन अवश्य करवाना है, और सीतो की मा के लिए रज़ाई भी अवश्य बनवा लेनी है—रुई तो भागवती न बचा बचा कर इकट्ठी कर ही ली है।

स्कूल पहुच कर लडको को पढाते हुए ईशर दास को कोट का कोई खयाल नही आया। पर आज जब भी कक्षा मे किसी को खासी उठती तो सीतो उसकी आखो के सामने आकर खडी हो जाती "सीतो। तू अब ज़रा भी चिन्ता मत कर बेटा ! अब के परीक्षाओ के बाद तेरा आपरेशन ज़रूर करा दूगा" वह मन ही मन अपनी आखो के सामने फिरती हुई सीतो से कहता।

"पद्रह तिये पैतालिस, पद्रह चौके साठ" हाक लगा कर लडके पहाडे याद कर रहे थे। पद्रह तिये पैतालिस और मास्टर ईशर दास सोचता रहा—जनवरी पद्रह रुपये, फ़रवरी–तीस रुपये मार्च–पैतालिस। रज़ाई ज़रूर आपरेशन ज़रूर

सध्या समय ट्यूशन पढाते हुए रायजाद मे उसे कुछ तब्दीली महसूस हुई। बहुत शरीफ तो वह पहले ही नही था, पर आज उसकी आखो मे शैतानी भरी हुई थी। ईशर दास ने सोचा—मा घर पर नही है, उद्दड हो गया है।

मास्टर ने चुपचाप उसकी गणित के प्रश्नो की कापी को जाचना आरभ किया। किंतु रायजादा निश्चल नही बैठा, और मास्टर के कोट को हाथ से छूता रहा। फिर अचानक ही उसने पूछा "मास्टर जी! आज डैडी ने मुझे एक मैगजीन दिया था, उसम एक बडा उम्दा जोक था—आपको सुनाऊ?"

मास्टर ने कापी पर से आंखें उठाए बिना ही कहा "सुनाओ।"

"एक मास्टर ने क्लास म एक लडके से सवाल गलत हल करने पर कहा "कान पकड लो।" लडके ने झट मास्टर के दोनो कान पकड लिए"—और रायजादा खूब ज़ोर-ज़ोर से हसने लगा।

फिर रायजादे न मास्टर से कहा "एक सवाल आप स पूछू? पर हिसाब का नही है बताएगे?" और रायजादे ने इस बार मास्टर की ओर से "हा" की प्रतीक्षा किए बिना ही सवाल पूछ लिया "भला मास्टर और नौकर म क्या अतर होता है?"

रायजादे ने यह प्रश्न किया ही था कि एक नौकर मास्टर ईशर दास को बुलाने आ गया "मास्टरजी! राय साहब ने आपको अदर बुलाया है।"

मास्टर नौकर के पीछे पीछे हो लिया। राय साहब गोल कमरे म अपने दोस्तो-यारो के साथ बैठे ताश खेल रहे थे। इस कमरे के दूसरे कोने मे नौकर मास्टर जी को खडा कर गया था।

बडा शानदार कमरा था। एक बार बचपन मे मास्टर ईशर दास लाहौर का अजायबघर देखने गया था। अजायबघर के समान ही सजा हुआ था यह कमरा। दो अगीठिया जल रही थी, और गर्मियो जसी गर्माई थी।

नौकर ने जा कर राय साहब को सूचना दी। उन्होने कुछ देर प्रतीक्षा करने का सकेत किया। ताश की चाल बडी मुश्किल थी शायद—वह सोच रहे थे।

मास्टर ईशर दास जहा खडा हुआ था उसकी बायी ओर एक बहुत बडी शीशो वाली अलमारी थी, और इस अलमारी मे इतनी पुस्तकें थी कि उसके स्कूल की लाइब्रेरी मे भी उतनी नही थी। अलमारी के एक ओर अंग्रेज़ी मे छपा हुआ एक लेबल लगा हुआ था "साइकालोजी"

पुस्तको की ओर से हट कर, मास्टर ईशर दास राय साहब की ओर हो रही बातें सुनने लगा।

"राय साहब ! आजकल बहुत ठड पड रही है। दो दो स्वेटर, कोट और ओवर कोट—फिर भी तीर की तरह बीधती है।"

"लो भोले बादशाहो ! आप भी तो कुए के मेढक ही हो। यह भी कोई ठड है। न कुछ पीने का मज़ा, न कुछ खाने का। ठड तो आस्ट्रिया मे पडती थी। जनवरी उन्नीस सौ तीस का ज़िक्र है जब मैं वियना मे "

मास्टर ईशर दास जिस कालीन पर खडा था उसमे उसके पैर धसते जाते थे—और कितना बडा था यह कालीन। तीन रजाइयो जितना, नही तीन से भी बडा, चार रज़ाइयो जितना। चार रज़ाइया चौथी सीतो की मा के लिए

राय साहब मास्टर के निकट आ गए। मास्टर ईशर दास ने हाथ जोड लिये।

"यहा बैठ जाइए, मास्टरजी !" राय साहब ने स्वय बैठ कर बराबर की कुर्सी की ओर सकेत करते हुए कहा "जो बात मुझे आप से आज करनी है, वह कुछ मुश्किल बात है पर खैर, जो होना ही चाहिए, उसे कहना ही पडेगा। आप बैठते क्यो नही ?"

मास्टर ईशर दास बैठ गया। जिस कुर्सी पर वह बैठा था उसकी गददी उसे अपने घर की सब रजाइया से मोटी और कही नरम प्रतीत हुई।

"वह सामने वाली अलमारी मे जितनी किताबें आप देख रहे हैं, सब साइकालोजी की किताबें हैं। यह मैंने दिखावे के लिए नही रखी हैं—मैंने सब पढी हैं और एक तरह से इनका अक निकाल रखा है अब। और यह अक मैं अपनी रोज़ाना ज़िदगी मे इस्तेमाल करता हू।" राय साहब यहा कुछ रुके, उन्होंने मास्टर की ओर देखा और फिर अपनी बात जारी रखी। "साइकालोजी की साइस की स्टडी बताती है कि जब तक शागिद के मन मे मास्टर के लिए गहरी

गरदेव सिंह रूपाणा

हवा

बच्चे के रोने की आवाज़ सुन कर मदन चौंक पडा।

आक के पीछे एक छह सात महीने का बच्चा औंधे मुह पडा रो रहा था। कभी उसका मुह धरती म टिक जाता। कभी वह सिर को ऊपर उठा लेता। कभी उसके रोने की आवाज़ मद्धिम सुनाई देती, कभी ऊची।

मदन ने गाडी खडी कर दी। बच्चे को उठाकर अपनी पगडी के छोर से उसका मुह पोछा। फिर उसन यह पता किया, वह लडका था या लडकी। वह लडकी निकली। बच्ची उसकी ओर देखन लगी।

पास ही दूध-जैसा सफेद बुरका ऐसे पडा हुआ था जैसे आधी मे उड कर आया हो।

'काई मा फेंक कर भाग गई विचारी को।" उसने सोचा "कैसी खराब हवा चल पडी है—माओ से बच्चे नही सभाले जाते।" उसने बच्ची की बाहें खोल कर अपनी गदन के गिद लपट ली।

सामने छोटे-से खोले मे एक आदमी पडा हुआ दिखाई दिया। आगे बढ कर देखा तो वह एक लाश थी। माथे पर काली स्याही से गुदा हुआ चाद और तारा। चेहरे पर पीडा की लकीर खिची हुई थी जिसके कारण चाद और तारे का रूप विगड गया था। पट से आता का गुच्छा बाहर लटक रहा था। पैरो के पास की ज़मीन रौंदी हुई सी थी। प्राण निकलने के समय तडपता रहा होगा।

"हत्यारे पिता को मार कर फेंक गये, मा को उठा कर ले गये—और इस लडकी को रोता हुआ छोड गये " जो उसके आने से पहले हुआ था उसका अदाज़ लगाकर उसने कहा।

देती है " और आज उसे पहली बार नीचे देखने की अपनी आदत पर गुस्सा आ गया। अगर वह नाले पर से ही सामने देख लेता तो पीछे लौट गया होता। पर जाता कहा ? उसे कौन अपने घर रात काटने देता ? इस राज न तो उसे यह कहकर अपनी दुकान स उठा दिया था कि काफला गुजर गया है अब कोई डर नही है। लाग डरे हुए थे। घरो के दरवाजे बद थे। सारे बाजार म उसे एक भी आदमी दिखायी नही पडा था। और तो और आज तो चुगी पर राम लाल भी नही था। चुगी बद थी। नही तो वह ही उसका कोई प्रबध कर देता।

चारा ओर लाशें ही लाशें देख कर ऊट बौखला गया। मदन भी डर गया।

"पानी " एक आवाज आई। सडक के किनार एक लाश ने उठने की कोशिश की।

मदन उसके पास चला गया।

पानी हम मर्दाने के वशज हैं बाबा नानक तुम्हें तारे

उसके सिर म चोट लगी थी। पिछली ओर लहू की तलैया सी भरी हुई थी। थोडा सा उठ कर वह फिर गिर गया।

सडक पर घर का बहुत सामान बिखरा पडा था। आटा गूदने की अथरी के ठीकर। टूटी हुई सुराही। एक चरखा, उखडा हुआ। कुछ अल्मूनियम के बतन, पिचके-पटके हुए। पीतल या कासे का कोई बतन नही था। उसन निहुड कर एक कटोरा उठा लिया और जोहड से पानी लाने के लिए चल पडा।

लाशा से अटा पडा था जोहड। मदन ने उन लाशा का गिना। तीस थी। पानी म खून घुला हुआ था। मदन ने साफ पानी ढूढते हुए जाहड का चक्कर काटा। पर साफ पानी कही भी नही था। उसने निहुड कर कटारा पानी से भर लिया।

कटारे के पानी को देखा, उसमे लहू था। फिर न जाने उसके दिल म क्या आया, वह तज तेज कदमा से चलने लगा।

"ले भई पानी, अगर तेरी जिंदगी और है तव बच जायेगा। इस पानी म तेर जसा का लहू मिला हुआ है ।" मदन ने उसका सिर परे पडी हुई पगडी

से कस कर बाध दिया। अतिम गाठ देने से पहले ही वह उसके हाथा मे लुढक गया। मदन के भीतर एक कम्पन-सा छिड गया और वह आगे चल पडा।

"पानी ।" उसने पलट कर देखा। सडक के दूसरे किनारे पर एक और लाश हिल रही थी। मदन ने सडक पर से पानी का कटोरा उठाया। थोडा सा पानी बाकी था। वह चित्त पडा था। उसकी कमर के पास से लहू बह बह कर धरती पर जम चुका था। मदन ने उसे बिठा कर घुटने का सहारा दिया। जितना पानी उसन पिया, सब का सब उसकी कमर से बाहर निकल गया। उसने कमर को बाध देने का इशारा किया।

'अब तुम मुझे उस कीकर के तने के सहारे से बिठा दो" उसने कहा "मिलटरी वाले कही मुझे जीते जी ही न दबा जायें।'

मदन जल्दी जल्दी सारा काम निपटा कर चलता हुआ। दिन बहुत थोडा रह गया था। वह दिन रहते घर पहुचना चाहता था। अभी भी थोडा-सा डर उसके भीतर कही छिपा हुआ था।

उसने गाडी चला दी। पद्रह बीस कदम गया होगा कि गाडी का एक पहिया एक लाश की टाग पर से गुजर गया। मदन को क्रोध आ गया। उसने गाडी म से एक लाठी उठायी और घुमा कर ऊट के जड दी। ऊट कुलाचें मारता हुआ दौड निकला तो गाडी तीन चार लाशा के ऊपर से गुजर गयी। मदन ने उतर कर ऊट की मुहार आगे से थाम ली और लाशो से बचा-बचा कर गाडी चलाने लगा।

बच्ची ने रोना शुरू कर दिया। मदन को अपनी भूल का एहसास हुआ। "मुझे पानी साथ लेकर चलना चाहिए था बच्ची के लिए।' गाडी को रोक कर उसने बच्ची को गोद म उठा लिया। वह चुप हो गयी। पर अभी भी किसी बच्चे के रोने की आवाज आ रही थी। एक कीकर के नीचे चार पाच बच्चे बठे थे। एक रो रहा था। जब वह उनके पास गया तो सबने रोना शुरू कर दिया। एक बडा-सा बच्चा एक लाश से जाकर चिपट गया।

"डरो मत मैं मारूगा नही " उसने कहा। "यह तुम्हारा अब्बा है ?' उसने बडे बच्चे से पूछा।

बच्चे ने हा मे सिर हिला दिया। सब बच्चे चुप हो गये। मदन खड़ा सोचता रहा, वह उनसे अब और क्या कहे ? कुछ बच्चे सडक की दूसरी आर भी कीकर के नीचे बैठे थे। कुछ रो रहे थे। कोई अपनी मरी पडी मा की छाती पर सिर रख कर सुबक रहा था। आस पास घायल पानी माग रहे थे। वह उनका क्या करे ? किस किस को सभाले ? कहा से पानी लाकर पिलाये, वह अकेला ? पीछे वह लाशो का काफला छोड आया था। आगे इससे बडा काफला बाकी था जिसमे से राह बना कर उसे घर पहुचना था—दिन रहते। न जाने कहा तक यह काफला बिछा पडा होगा। जीवित लोगो का तो बीस मील लम्बा काफला सुनने मे आया था।

कुछ देर तक वह चुपचाप खडा रहा। फिर उसने बच्ची को उन बच्चा के पास लिटा दिया और वहा से तेज कदमा से चल दिया—कही ऐसा न हो कि उसका इरादा बदल जाए।

वह उसी तरह मुहार थामे हुए गाडी का लाशा से बचा-बचा कर ले जान लगा। फिर भी कभी किसी का पैर नीचे आ जाता, कभी किसी की टाग पर से पहिया गुज़र जाता। पर उसे उट पर गुस्सा नही आ रहा था। उसका क्या कसूर था, बिचारे का। बल्कि उसका तो जोर लग रह था, बार बार पहिये के आगे रोक लग जाती थी

आधे रास्ते मे नाले पर पहुच कर उसे अनुभव हुआ, वह थक गया है। जिस बाह से ऊट की मुहार कभी इधर कभी उधर खीचते हुए आया था, वह अकड गयी है और अब उससे उसका बोझ नही उठाया जा रहा है। अब तक वह ढाई मील चला था। सडक का इतना ही सफर बाकी था और फिर आगे एक मील का कच्चा रास्ता जो आज पक्की सडक से ज्यादा साफ होगा। सूरज डब चुका था। पुल पर पहुच कर उसने देखा, नाले का पानी पटरियो के ऊपर से बह रहा था। नाला लाशा से अटा पडा था। उसने गाडी रोक दी।

ऊट ने लीद कर ली ता मदन गाडी पर चढ कर बैठ गया और ऊट की मुहार को ढीला छोड दिया। कभी कोई लाश नजर पड जाती तो ऊट की मुहार को एक ओर को खीच देता, नही तो गाडी ऊपर से ही गुज़र जाती।

हौले हौले अधेरा बढने लगा। लाशें दिखायी देनी वद हो गयी। बस तब पता लगता जब ऊपर से गुजर कर गाडी का पहिया धम से हाता। कोई एक मील चलने के बाद उस यह मालम होने लगा कि पहिये के नीचे आयी हुई लाश किसी बडे आदमी की है या बच्चे की। वह ऊट के पैरो की आवाज से जान जाता कि सडक सूखी है या लहू से लथपथ।

अब उसका डर बिलकुल दूर हो गया था और उसने वह गीत हौले हौले गाना शुरू किया जो रात का सफर करते समय सदा गाया करता था—

"नी तू माडी कीती साहिबा,
नी तू यार दित्ता मरवा नी।"

(री साहिबा। तूने बुरा किया, यार अपने को मरवा दिया।)

पर आज उसे न तो मिर्ज़ा तलवारा से कटता दिखायी दिया न ही लहू के परनाले वहते दिखायी दिए। उसे अपना गीत रसहीन लगा तो उसने गाना बद कर दिया।

पक्की सडक का सफर खतम हुआ तो कच्ची राह पर मुड कर ऊट अपने आप ही रुक गया। कुछ मिनट रुका रहा फिर अपने आप ही चल पडा।

अपने दरवाज़े के सामन पहुचा तो कितने ही अडोसी-पडोसी बोल उठे— "आ गया। आ गया।"

उनके घर मे से रोने की आवाजें और ज्यादा तेज हो गईं। वह पास गया तो जो लाग वहा इकट्ठे हुए थे, चुप हो गये। उसने गाडी से ऊट को खोला और आगन मे चरी पर बाध दिया। एक ओर बहुत सारी औरतें विलाप कर रही थी। उनमे मदन की मा भी थी, वह उठी और उसके गले से लग कर धाडें मारने लगी।

"हम लुट गए बेटा।"

क्या बात है मा ?" उसने मा की बाहें अपने गिद से हटा कर पूछा।

'बिल्लू छत से गिर कर पूरा हो गया। उसे बताया गया।

वह चुपचाप बठ गया। कुछ देर सब चुप रहे। फिर किसी ने कहा 'मदन लाल! चलो सस्कार कर आए। हम तुम्हारा ही इतज़ार कर रहे थे।

"जरा ठहरो, यह काम भी करे लेते हैं।" मदन ने कहा, "ज़रा सा सुस्ता लू, बहुत थका हुआ हू, भूख बहुत लग रही है।"

मा ने उसे कधो से पकड लिया।

"ओ हत्यारे! तू इसे काम बता रहा है तुझे भूख लगी है अरे कोई जना लालटेन ले आओ रे।" वह अपने दुहत्तड मारने लगी।

कोई लालटेन ले आया।

"गाव वालो! हम लुट गए। मैं छोटे को रो रही थी वडे को भी कुछ हो गया पता नही किसकी हवा लग गयी है देखो, कैसे दीदे फाड फाड कर देखे जा रहा है।।"

सब औरतें उठ कर उसके चारा ओर घिर आयी।

"कोई ऊपरी हवा लगती है।"

"कोई जना सयाने को वुला लाओ।"

बिल्लू की लाश अकेली पडी थी, कपडे मे ढकी हुई। मदन उसकी ओर देख रहा था, देखे ही जा रहा था। उसे ऐसा लग रहा था जैसे एक लाश वाकी लाशा से एक मील के फासले पर पडी हो—वस!

गुरबचन सिंह भुल्लर

किस्मत के मारे

अटैची उठाकर मैं रात की गाडी पर सवार हो गया था। सारे रास्ते नींद नही आई। ज़रा आख लगती तो जैसे मुझे याद झझोडकर जगा देता। वही अखबार वाला चेहरा। चौडा माथा दीप क समान चमकती बडी-बडी आखें, जचती हुई नाक भरे हुए गाल अखबार की काली छपाई म जिनका रंग दिखाई नही देता था किंतु जो निश्चित ही मद क समान रहे होग होठो पर मीठी मीठी मुस्कुराहट भीगती हुई मसें और सवार कर बाधी हुई पेंचदार पगडी के नीचे दाढी का पतला-पतला हाशिया। मैं आखें खोल देता—वह चेहरा हवा म अभी भी लटका हुआ होता और फिर होते-होते फीका पडते-पडते मिट जाता। फिर पलकें मुद जाती और फिर इसी प्रकार होता ।

काफी दिन चढे मेरा स्टेशन आया। रात की बे-आरामी क कारण सिर चकरा रहा था। मैंने बग म से सिर-दर्द की गोली निकाल कर सूखी ही निगल ली और चाय वाले की ओर चल पडा। सोचा इतनी देर म भीड भी निकल जाएगी।

चाय पीकर और गेट पर खडे बाबू के हाथ म टिकट देकर मैं रेलवे स्टेशन के बाहर निकला तो कुछ दूर आगे फिर किसी न मुझे रोक लिया।

टिकट मैं उस बाबू को दे आया हू" मैंने गेट की ओर इशारा किया।

कहा से आए हो ?' उसने कर्कश स्वर मे पूछा।

मैंने इद गिर्द देखा। मेरे साथ निकलने वाले पाच-सात देहाती तो चले गए लेकिन मुझे घेर लिया गया था। मैंने मामला बिगडता देखकर कहा, 'यू०पी० ।

पुलिस की ओर से फैलाई हुई दहशत की भनक अखबारो द्वारा मिलती रही थी। मैंने दिल्ली जानबूझकर नही कहा। दिल्ली तो राजनीति और पत्रकारी थी। मैं ताड गया था कि दिल्ली कहने से मुझे कोई आगे नही जाने देगा।

"यू० पी० मे क्या करत हो ?" पहले-जैसे ही ककश स्वर मे दूसरा प्रश्न हुआ ।

"वहा हमारी जमीन है," मैंने बे झिझक उत्तर दिया ।

"जा कहा रहे हो ?" अपराधियो के समान मुझसे पूछ-ताछ जारी थी ।

"नवा पिंड" मैं बे झिझक उत्तर देता रहा ।

"वहा क्या है ?"

"मेरी बुआ बीमार है । तार आया था ।"

"कहा है तार ? दिखाओ ?" उसने हाथ आगे बढाया ।

"तार सभालकर रखकर मुझे क्या दफ्तर से छुट्टी लेनी थी ? पढा और फेंक दिया", मैंने रूखे होकर कहा ।

"लौटना कब है ?" वह कुछ-कुछ झेंप गया था ।

"अगर बुआ ठीक हुई ता शाम को ही ।"

"अच्छा जाओ, जल्दी लौट जाना," उसने एक ओर हटते हुए कहा ।

मुझे क्रोध भी आ रहा था, पर साथ ही बेबसी भी धुध की तरह पसरती रही थी ।

आखें झुकाकर चलते हुए मैं "नवा पिंड भई नवा पिंड" की हाक लगाने वाले एक अफीमची के तागे मे जा बैठा । तीन किसान सवारिया मुझसे पहले बैठी हुई थी और मेरे बाद एक और बुढिया आई तो तागा चल पडा ।

तागा बडी सडक की ओर मुडा ता एक सिपाही आगे हो गया, 'ओ अफीमची ! तुझसे कहा था दो चार दिन तागा मत जोत । तू बाज नही आता फिर ?"

अफीमची ने घाडे का रोकने के लिए चाबुक मारकर एक आर की लगाम खीची और बाला, "रोटिया कौन देगा हवलदारजी ?"

सिपाही न कच्चा पडकर पूछा "कहा की सवारिया हैं ?" नवापिंड की" अफीमची ने बताया ।

"आपको सरदारजी, कहा जाना है ?" सिपाही ने मेरी ओर इशारा किया ।

"नवा पिंड" ।

और फिर स्टेशन के पास किए गए प्राय सभी प्रश्न ही उसी तफ्तीश के ढग मे दोहराए गए ।

तागा चल पडा । पीछे से सिपाही ने आवाज दी, जसे कुछ भूला हुआ याद आ गया हो—"तागा नवापिंड से लौटा लिया कर। अगर आगे गया तो हड्डिया तुडवा बैठेगा ।"

"अच्छा महाराज !" अफीमची ने पीछे की ओर मुह मोडकर कहा और घाडे को चाबुक मारता हुआ किसी को सबोधन किए बिना एक मोटी सी गाली दी और अपनी विवशता व्यक्त की "उठा लू इनकी बहन को, कोई बस नहीं चलता।"

रास्ते मे हुई इस वारदात के सबध मे रुक रुक कर बात चलती रही। परन्तु किसी अदश्य भय के कारण कोई भी अधिक नही बोल रहा था। बात करते हुए अफीमची की भी जैसे आवाज जवाब दे जाती थी। वह कहता "गजब हो गया, गजब भाइयो ! क्या पूछना और क्या बताना ?" वह बार-बार यही दोहराता रहा और अपनी बेबसी की कडवाहट धोने के लिए "उठा लू इन की बहन को" कह-कह बार-बार जमीन पर थूकता रहा।

सामने एक गाव दीखने लगा। मैंने उसकी ओर सकेत करके पूछा, 'वह कौन सा गाव है, भाई ?"

"नवा पिंड" तागेवाले ने बताया ।

"कत्ल वाला गाव पदल के रास्ते कितनी दूर है आगे ?" मैंने चलने के लिए शरीर को तैयार करते हुए कहा ।

"और किसी को आगे जाना है, भाई ?" अफीमची ने तागे मे नजर घुमाकर पूछा ।

और कोई आगे जाने वाला नही था। अफीमची ने मुझसे प्रश्न किया "किसके घर जाएगे आप ?"

"वह लडका मारा गया है न—दर्शन, उनके यहा " मैंने धीमे स्वर म कहा ।

"क्या लगता था आपका ?"

"कुछ नही लगता था, बस अखबार मे तस्वीर देखी थी

"वैरियो का सत्यानाश हो।" अफीमची के धुर अतर से आह निकली "बैठे रहो मेरे भाई, घर तक छोडकर आऊगा", उसने कहा। 'सरदारजी' के स्थान पर वह मुझे 'भाई' कहने लगा था। "लगता वह मेरा भी कुछ नही था, पर था जवान गवरू, पौंडे जैसा। जब उस ससुरे का मुह आखा के आगे आ जाता है, जान पडता है कलेजे मे से आग की लपट निकल जाती है।"

और जबसे मैंने लडके की तस्वीर देखी थी, मेरे अपने कलेजे मे भी जैसे कुछ चुभ गया था। मैंने अपनी एल्बम निकाली थी। जिन दिनो मैं ग्यारहवी मे था बिलकुल ऐसी ही फोटो मेरी थी। अजीव-अजीव खयाल मेरे मन मे आने लगे थे— मानो यह अखबार वाली फोटो मेरी हो। मेरे वद्ध पिता की कमर टूट गई हो और मेरी वद्ध मा का भरा बाग उजड गया हो।

शायर ने किसी जवान के फकीर हो जाने पर उस की मा के सबध मे कहा था—

जिसका चाद-सा बेटा राख लगा बैठा
यह करनी ईश्वर की मा ने सह ली है—री!

पर यहा तो चाद-से बेटे ने राख नही मली थी, बल्कि उसका सफेदे के पेड जैसा शरीर जलाकर राख कर दिया गया था।

उसने तागा रोककर नवा पिंड की सवारिया उतारी और घोडे के कमची मार दी।

"फिर तुमसे पूछताछ होगी मेरे भाई! मुझे भी यही उतार दो। मैं पैदल चलकर पहुच जाऊगा, कोई बात नही।" मैंने तागेवाले को सिपाही की बात याद दिलाई।

"जहा मेरे भाई, पौंडे जैसे जवान गबरू जिबह होते हैं वहा अगर इस अफीमची की एकाध हड्डी टूट भी गयी तो क्या हो जाएगा?" उसने घोडा तेज कर लिया।

कुछ देर चुप्पी छाई रही। फिर मैंने पूछा, "दशन के माता पिता हैं, भाई?"

"हैं, किस्मत के मारे। जो अच्छे भाग्य वाले होते, यह दिन देखने से पहले ही मर न गए होते?" अफीमची ने सिर को एक झटका दिया।

"हू।"

'पिछले जन्म के कोई पाप हैं, भाई। जिन्हें ईश्वर ने इतने दुःख के कोल्हू मे पेरना हो उन्हें पहले मौत भेजकर आराम क्या दे?" अफीमची ने गहरे ज्ञान की बात की।

कितनी ही देर चुप रहने के बाद अफीमची खुद ही बोला, "क्या पूछते हैं, सरदारजी? दोनो जीव ऐसे दरवेश हैं, अगर तडके मुह सामना हो जाए, दिन भर किसी बात की कमी न रहे आदमी को। दशन का बूढा पिता, निरा साधु फकीर है। किसी के खेत से एक तिनका भी हवा से उडकर इसके खेत मे आ जाए, बाहर फेंक देगा। धर्मी आदमी है। गऊ निरा गऊ। और बुढिया उससे भी धमन। गाव म किसी को काटा चुभ जाए लठिया टेकती हुई आ पहुचती है "

फिर अफीमची एकदम चुप हो गया। शायद उसके अतर मे यह प्रश्न उठ खडा हुआ था कि इतने अच्छे लोगा के साथ रब्ब ने ऐसा क्यो किया? और कोई उत्तर न सूझता देखकर उसने मेरी ओर मुह करके कहा, 'इस जन्म म तो भाई! उन्हा कभी कुत्ते को भी डला नही मारा, कोई अगले पिछले जनम का हिसाब किताब होगा।"

लाश गाव ले आए थे?' मैंने अपनी चुप्पी तोडी।

'ना भाई, कहा? मेरे साला ने मिटटी भी गाव की चौहद्दी मे समेटने नही दी शाम को मान गए थे कि लाश तडके दे देंगे। कहते है आधी रात कोई मत्री आया और रातो रात लाशें समेटने का कह गया ।"

'हू।'

कहते हैं, भाई लाशें ज्यादातर जवान लडको की ही थी। अभी कौन-सा किसी को पता है किसका कौन मर गया। स्कूल कालिज बद पडे हैं। बात तो किसी को किसी से करने नही देते, मेरे ससुरे।'

'पर मत्री ने तो कहा था यह गोलिया मेरे बेटो की छाती मे लगी हैं' मैंने अखबार म छपी एक खबर याद करते हुए अफीमची को टोहा।

'हा भाई। जब दूसरो के मरे तो ऐसे चरित्र करने मे क्या जोर लगता है? अगर उसका अपना जवान बेटा ऐसे कुत्ते बिल्ले की तरह मारा गया होता, देखते फिर कैसे बाल नोच-नोच कर हाल-बेहाल होता मर गए भाई माओ के बेटे अब कोई कुछ कहता फिरे अफीमची ने हवा म खाली हाथ घुमाकर कहा।

"दशन को पुलिस ने रात को ही फूक दिया था ?" मैंने पूछा ।

"एक बार तो खीच कर ले आये थे । बडे कालिज के लडको को आधी रात को पता लग गया कि पुलिस लाशें फूक रही है । मुर्दा घाट से एक लाश उनके हाथ लग गई, उसे उठा लाए । कपडो से पहचाना, भई दशन है । सिर तो साथ था ही नही " अफीमची ने खाली-खाली आखो से देखते हुए कहा ।

"सिर कहा गया ?" मैंने किसी अखबार मे ऐसी बात नही पढी थी । गोली से मरने या घायल होने की बातें ही सुनी थी । चली तो गोली थी ?"

"तडपते हुए घायल लडको को कसाई उठा कर ले गए थे, भाई । फिर जाने क्या बीती । और फिर है तो सरकार, गला काटने वाली गोलिया बना ली हागी ।" कडवा व्यग्य अफीमची के होठा पर पसरा हुआ था

"फिर लाश का क्या किया ?"

"करना क्या था ? पुलिस की धाड-की धाड ने आकर फिर छीन लिया लाश को । शोर मच गया । लडके कहें हम लाश देंगे नही । फिर शहर के चौधरी बीच मे पड गए । समझौता हो गया कि बम, घर के जीव आकर तडके लाश को फक देंगे, गाव मे तो हम ले नही जाने देते । बस भई दस गाव रो धो कर बैठ गए और मा-बाप हाय झाडकर घरो मे आ बैठे आ हो ओ मेरे बेइन्साफ भगवान ।"

"वडा अनय हुआ । छोटी सी बात पर बूचडो ने लडका के चिथडे उडा दिए ।" मेरी आह निकल गई ।

'उन्होंने भाई वोटो के वक्त सीमेट वाला कट्टा नोटो का देकर सरकार का अधा किया हुआ था । अव लडको से थोडी बहुत तू-तू मैं-मैं हुई । ऊपर वालो के मुह मे उन्होंने फिर हडडी दे दी और पुलिस वालो को दारू से अधा करके लडको से टकरा दिया । साथ ही कहते हैं अपने पाले हुए गुडो को भी भिडा दिया ।" अफीमची ने सारी बीती कह सुनाई । 'न्याय-अन्याय की बात कौन सुनता है ? अधे पुलिस वाला और बदमाशो ने लडका की बोटी-बोटी करके अक से लहू पी लिया ।"

"बडा जुल्म हुआ ' मैंने आह भरी ।

'यह अंधेर तो कभी सुना न देखा।" अफीमची ने घोडे को पुचकारते हुए कहा।

इतने मे गाव आ गया। चौक पर तागा रोक कर अफीमची ने एक लडके को आवाज़ दी "इधर आ ओ लडके! इन सरदारजी को उनके घर छोड आ, उन किस्मत के मारा के घर अरे, वह अपने मरने वाले लडके दशन क घर ।"

* * * * * * * *

चौडा आगन आदमियो से भरा हुआ था। बडे दरवाज़े से अदर जाते ही सक्डा आदमी और आगे ऊचे चबूतरे पर औरतें। इतने लोग जमा थे पर एक बोझल चुप्पी छाई हुई थी। अधिकाश लोगो ने घुटना के गिर्द बाहें लपेट कर बीच म सिर रखा हुआ था। कभी-कभी किसी का सिर घुटना म से ऊपर उठता और पास बैठे हुए आदमी स कोई एकाध बात हो जाती और फिर जैसे सिर का बोझ कधा से सहन न हो रहा हो वह झुकते-झुकते घुटनो पर जा टिकता। कभी-कभी कोई लम्बी आह 'वाहगुरू! वाहगुरू!' की आवाज़ या "हे परमात्मा तू ही है तू ही है' की पुकार सुनाई देती। परे बठी हुई औरतें चादरा दुपट्टो और चुनरिया मे बधी हुई गठरियो के समान प्रतीत होती थी। शायद वह कई दिनो स बन करके न किसी रब्ब को जगा सकी थो न किसी हाकिम का पत्थर दिल पिघला सकी थी। अब या तो धीरे धीरे भरे जा रहे हुकारे सुनायी दे रहे थे या "हाय ओ बैरियो" की बीध डालने वाली चीखें।

मैं पाछे एक ओर होकर चारे की नाद से टेक लगा कर बैठ गया। मेरी बाहें स्वत घुटनो के गिद लिपट गई और सिर झुकते झुकते उन पर जा टिका। आहा हुकारो और रब्ब से गिले शिकवा के बावजूद चुप्पी की गाढी चादर वसी की वैसी ही तनी हुई थी।

कुछ दर तक मैं चुपचाप उसी तरह अपने घुटनो मे सिर दिये बैठा रहा। फिर मैंने पास बैठे हुए आदमी से पूछा 'सरदारजी दशन के पिता कौन मे हैं ?"

"वह धारीदार खददर के कुर्ते वाले वह दीवार के सहारे से बैठे हुए हैं " उसने उगली मे इशारा किया।

मैं जाकर उनके पास बैठ गया।

मुझे पास बैठे देखकर बुजुर्ग की कई दिनों से रह रह कर बहने वाली आखें फिर बहने लगी। मैंने उनका हाथ पकड कर दबाया, 'बहुत ही अनहोनी घटना हुई सरदारजी। मेरा गला भर आया और मैं चुप हो गया।

कुछ पल चुप छाई रही। बुजुर्ग की आखें बहती रही और मैं रुमाल से अपनी आखो की नमी सुखाता रहा।

'तुम्हारे साथ दर्शन पढ़ता-पढ़ाता था भाई?' पास बैठे एक और बुजुर्ग ने पूछा, 'किस जगह से आए हो?"

'मैं दिल्ली से आया हू। मैं तो दर्शन को नही जानता था। बस अखबार मे तस्वीर देखी तो रहा नही गया।' मैंने आने का कारण बताया।

चारो ओर से आहें गहरे दीर्घ निश्वास और 'हे वाहगुरू" "हे परमात्मा' की आवाज़ें उठी और एक आदमी बोला 'सरदार जी, धरती डोल गई। जिस जिस ने सुना कलेजा फट गया चाहे कोई जानता था या नही " और फिर एक क्षण रुककर उसने कहा, "पर बैरियो के पत्थर दिल न पिघले ।"

"मा कहा है?" मैंने उन्ही बुजुर्ग से पूछा।

"वह दुपट्टे वाली" उन्होंने इशारा किया, 'जिन्हें दो बूढी औरतो ने सहारा दिया हुआ है ।'

मैं उठकर मा के पास जा बैठा। आखें बद किए वह बेहोशी के समान बैठी हुई थी—राख जैसा बुझा हुआ चेहरा, मुट्ठी भर भर उखाडे हुए सिर के बाल और झुर्रियो वाले गालो पर आसूओ की जमी हुई लकीर।

उन्हें सहारा दे रही एक बुढ़िया ने उनका कधा झझोड़ा, "बेबे देखो, अपने दर्शन का कोई यार-दोस्त आया है।"

मा ने जोर लगाकर आखें खोलीं तो आगे को होकर मेरे सिर की ओर हाथ बढाया। मैंने उसके कधे के ऊपर बाह डालकर कहा 'मा, तुम्हारा दुख " और मेरी रुलाई छूट गई।

मां ने मुझे अपने से बसके चिपटाकर कूक मारी—"मेरे लुट गए दोनों जहान, रे बेटे ।'

और फिर एकदम उनके हाथ ढीले पड़ गए। वह फिर बेहोश हो गयी ।

कुलवंत सिंह विर्क

भूसे का गट्ठर

बहादुर सिंह सचमुच ही बड़ा बहादुर आदमी था। उसकी बहादुरी केवल लाठी-सोटे की बहादुरी नहीं थी, वह अपनी जात बिरादरी के नाम और आन पर मर मिटने वाला आदमी था। चटठा बिरादरी के वहा बहुत सारे गाव थे। बस यह बिरादरी ही बहादुर सिंह की जी-जान थी। इस बिरादरी मे किसी की बहू उसकी अपनी बहू थी। अगर इस बिरादरी के किसी आदमी की हेटी हो जाए तो इसको बहादुर सिंह अपनी हेठी समझता। किसी की इज्जत उसकी अपनी इज्जत थी। यह बिरादरी बस बहादुर सिंह का एक बडा-सा कुनबा थी, जिस पर उसने मुर्गी की तरह अपने पख फैलाये हुए थे। बहादुर सिंह और उसके अपने कुछ और साथी इस बिरादरी को ढक-लपेट कर इकटठा रखते, पुरानी बातें सुन-सुनाकर उसका आत्माभिमान बनाये रखते। नयी पीढी के लडको को वह बतात कि कैसे चटठो ने सदा एकजुट होकर सब विपत्तिया का सामना किया। कैसे पिछले वक्तो मे उन्होंने भटिटयो और खरला को उनके गावो से भगाकर वह गाव हथिया लिए और उनकी जमीन आपस मे बाटकर वहा नये गाव बसाए। ऐसी बातें सुनकर नयी पीढी के मन एक दूसरे के निकट रहते और जजीर की कडिया के समान वह आपस मे जुडे रहते।

वैसे चटठा ने इन गावा के गिर्द कोई बाड नही बनायी थी। बाहर के लाग इन गावा के आर-पार आते जाते, पैदल, घोडिया पर, मोटरा पर, लेकिन वह इस बिरादरी पर कोई असर न डाल पाते। किसी को भुला न सकते। सरकार लगान लेती, पुलिस चोरी करने वालो को लडने वालो को जेल भिजवा देती, पर यह बिरादरी फिर भी एकजुट, डब्बो के समान बन्द रहती। बिरादरी के ढाचे पर इन बातो का कोइ असर न होता। हल चलते रहते, भैंसें जोहडा मे नहाती रहती, रोटिया पकती रहती, और मम्मी सेवा करते रहते।

चटठा के इन गावा के निकट एक गाव वडँचा का भी था। वडचा का वसे तो एक ही गाव था और चटठो के बहुत, किंतु एक-एक वडच के कई कई मुरब्बे थे और कई वडे-वडे लोगा के बाहर यू० पी० मे गाव-के-गाव अपने थे। विचारे चटठा की भूमि तो वस गुजारे भर की थी। इस जमीन से रोटी निकालने के लिए हर एक को अपने हाथो से खेती करनी पडती थी। पर उन्होने कभी वडचो की फू-फा का रौब नही माना था और न कभी उनसे डरे थे।

कहते हैं मोटरो के आने से पहले वडचा का सबसे वडा सरदार, महताब सिंह अपने हाथी पर चढकर बहादुर सिंह की हवेली के पास से जा रहा था। बहादुर सिंह अपने बेटे की उगली पकडे बाहर खडा था। जब सरदार पास आया तो अपने बेटे की ओर इशारा करके बहादुर सिंह ने कहा—'सरदार महताब सिंह ! मेरे इस बेटे का अपने गाव तक हाथी पर बिठा कर ले जा, कहता है घर जाना है।" सरदार विचारा न हा करने योग्य, न ना करने योग्य। खिसियाना-सा होकर बोला 'भई ऊपर बिठा दे, हम ले चलेंगे।" बहादुर सिंह की अपने बेटे को गाव पहुचाने की कोई इच्छा नही थी। यह बात तो उसने केवल अपने आपको हाथी पर चढे हुए सरदार के स्तर तक ले आने के लिए कही थी। बहादुर सिंह उस समय अकेला नही बोल रहा था। उसकी आवाज मे उसके सैकडा साथियो की, चट्ठा के अनेक गावा की शक्ति बोल रही थी।

एक बार डिस्ट्रिक्ट बोड के चुनाव हो रहे थे। वडचो का एक सरदार भी मेम्बरी के लिए खडा हो गया और मोटर पर चढ कर वोट मागने बहादुर सिंह के गाव आ गया। बहादुर सिंह उसे कोई भी वोट नही दिलाना चाहता था क्योकि मुकाबले पर चटठा मे से भी एक आदमी खडा हुआ था। उसे एक मखौल सूझा। हुक्का हाथ मे लेकर जाते हुए गाव के एक वृद्ध चूढे की ओर उगली से इशारा करके बोला, सरदारजी ! हम तो आप के पडोसी हैं, आपके बाहर नही जा सकते पर यह बाबा हमारे गाव का चौधरी है, जिधर वह कहता है, उधर ही सारा गाव वोट डाल देता है। आप जरा उसे मना लें।"

सरदार विचारा भाग कर उस चूढे के पीछे गया। वह उसका आदर सत्कार करने के लिए उसके पास को होता जाता था और चूढा विचारा परे-परे होता जाता था कि कही सरदार छू ही न जाए। बहादुर सिंह और वहा बठे हुए और लोगो की हसी छूट गयी और सरदार विचारा शर्मिन्दा होकर अपने गाव लौट गया। बाद मे

वह सरदार कहता फिरता था "भई, चटठा के गिद ता एक चारदीवारी खिंची हुई है, इसम से गुज़रना बहुत कठिन है।"

एक दिन चटठा की चारदीवारी मे दरार पडने की खबर आई। एक फौजी चटठे ने अपनी पहली पत्नी को छोडकर एक और ब्याह कर लिया था और उसकी पहली पत्नी अपनी छोटी-सी लडकी को साथ लेकर अपने पीहर मे रहने लगी थी। पीहर वाला का हाथ तग देखकर उस औरत ने शहर मे जाकर किसी के घर नौकरी कर ली। वह आदमी किसी दफ्तर म नौकर था। धीरे धीरे बात निकल गई कि चट्ठे की बहू शहर मे किसी के घर नौकरी करती है। बहादुर सिंह ने जब यह सुना तो उसे बडा दुख हुआ। अगर उनकी बहू किसी के घर मे नौकरी करती फिरे तो उनकी क्या इज्जत रह गयी? क्या हुआ अगर वह उसकी अपनी बहू नही थी, उनके गाव की भी नही थी बल्कि किसी दूसरे गाव की थी फिर भ वह चट्ठे की बहू थी और इसलिए बहादुर सिंह की अपनी बहू थी।

बहादुर सिंह घर का कोई इतना रईस नही था, फिर भी वह यह नही चाहता था कि चट्ठा की कोई बहू शहर म नौकरी करती फिरे। पर इसमे उस बिचारी का क्या दोष था? अगर उसके पट को रोटी न मिले तो उसे नौकरी तो करनी ही हुई। इस समस्या को निपटाने का एक ही उपाय था कि बहादुर सिंह उसे अपने घर ले आए। उसे घर ले आने की सलाह बहादुर सिंह ने अपने बेटे से भी की। चट्ठा की बहू का किसी के घर मे नौकरी करना लडके के स्वाभिमान को तो चोट पहुचाता था, पर उसे यह पसद नही था कि बहादुर सिंह उस औरत का सारी उम्र का खच अपने सिर ले ले।

"जैसे भी किसी के दिन कट रहे हो, उसे तो काटने ही होगे, पर बापू, आपको उससे क्या? आप कोई सारी दुनिया को घर बैठे रोटिया दे सकते हैं?" उसके बेटे ने दलील दी। किंतु बहादुर सिंह के लिए यह कोई लबी बहस का सवाल नही था, बल्कि एक औरत को अपने घर रोटी देकर सारी बिरादरी की इज्ज़त बचाने का सवाल था। बहादुर सिंह के मन मे यह निश्चित था कि जब तक वह औरत शहर मे नौकरी करती थी तब तक वह खुद आराम से रोटी नहीं खा सकता था। अत म वह उस औरत को समझा बुझाकर अपने घर ले आया और इस प्रकार

चटठा के गिद बनी चारदीवारी म जो मापला हा गया था, उसे बद कर दिया। अब बहादुर सिंह घोडी पर चढकर गाव-गाव जाता और अपन इस काम के बारे मे लागा की प्रतिक्रिया की टोह लेता। उसके काम की चारा आर घूम थी।

इस बात को कई साल बीत गए। बहादुर सिंह के बूढे हो रहे शरीर न कई जाडे और देखे और चुनाव एक बार फिर आ गए। एक ओर से एक चटठा खडा हुआ था और उसके मुकाबले मे शहर का एक वकील था। बहादुर सिंह के लिए वोट डालने का सवाल बिलकुल साफ था। सारे चटठा का चाहिए था कि वह चटठे उम्मीदवार को अपन वाट दें और रुपये पस से भी उसकी सहायता कर। पर उस वकील ने एक और जाल बिछाया हुआ था। उसने चटठा के गावा म यह बात फला दी कि अगर सारे चटठे उसके पक्ष मे वोट डालगें तो वह दस हजार रुपया लगाकर उनके एक बडे गाव म एक हाई स्कूल खाल देगा। सारे पेंशन पाने वाले फौजी इसलिए उस वकील को वोट देन के पक्ष म थे। "अगर स्कूल बन गया" वह कहते थे 'तो लडके पढ़ेंगे और नौकरिया करगे। पहल ही जमीनें तग होती जा रही हैं। मेम्बरा का क्या फायदा ? चटठा हो गया तो क्या और वकील हो गया तो क्या ?' बहुत लोग फौजिया के पीछे हो लिए और यह फसला हुआ कि सारी वाटें वकील को ही दी जाए और चटठा उम्मीदवार बठ जाए।

जिस दिन यह फसला हुआ उस दिन बहादुर सिंह बहुत दुखी था। उसका जी करता था कि वह अपनी सारी जमीन बेच कर रुपया इकटठा करे और फिर लोगा से कहे आओ मैं तुम्हें स्कूल बनवा देता हू, तुम वोटें अपने चटठे भाई को ही दो। मजबूत बनो, क्यो ख्वामख्वाह इधर उधर के लोगा के बहकावे मे आते हो।' पर शायद उसकी जमीन इतन रुपयो की थी ही नही और फिर जमीन बेचना कौन सा आसान काम था। उसे बहुत अफसोस था कि आसपास से आर्थिक बाढ आकर उसके इलाके को चीर रही थी और उनके अपने घरा म बाहर के लोग चौधरी बनते जा रहे थे।

बहादुर सिंह के गाव का एक जाट लडका जमीन से गुजारा न होते देख तागा चलाने लगा था। बहादुर सिंह को यह काम कुछ घटिया-सा लगता था। तागेवाला सब किसी का नौकर था। जिसकी जेब मे चार पस हा उसे ही जी, जी और उसका वह दबल। पर इस काम म एक और बात जो बहादुर सिंह को ज्यादा चुभती थी यह थी कि और तागेवालो मे कोई मेहरा था कोई नाई। उस

चट्ठे लडके की इन्ही से दोस्ती थी और इनके साथ ही उठना-बठना। किसी देखन वाले के लिए तो यह पहचानना भी कठिन था कि वह चट्ठा का लडका था या धीमरा का। फिर बहादुर सिंह न सुना कि वह लडका एक दिन एक धीमर तागेवाले को अपने साथ घर ले आया। दोना न साथ बैठकर शराब पी और फिर चट्ठे लडके की पत्नी न उन दोना को खाना खिलाया। यह सुनकर बहादुर सिंह के तन-बदन म आग लग गयी। कोई धीमर किसी जाट चट्ठे के घर बैठकर शराब पिये और फिर उस चट्ठे की घरवाली उस धीमर का खाना खिलाए, यह बात बहादुर सिंह से सहन हान वाली नही थी। इन दिना जब वह तागेवाला लडका बहादुर सिंह को मिला ता उसन उससे बात चलायी।

'बेटा! शरीफ लोग ता धीमरो का घर लाकर शराब नही पिलाते न।

चाचा! धीमर हा या कोई सरदार हो, तागेवाल सब तागेवाल ही हाते हैं।"

बेटा! तागेवाला ता तू हुआ अड्ड पर। गाव मे तो तू हमारा बेटा है। हमारी बहू से ता धीमरा को खाना न खिलवाया कर। धीमरा का हमारे बतन माजते है या हमार साथ बराबरी म बैठकर हमारी बहुआ के हाथा का बना खाना है? "

सिफ अड्डे पर तागेवाला होने से नही चलता चाचा! रास्त मे अगर मरा तागा खराब हो जाए या मेरा साज टूट जाए या मेरे घाडे को कुछ हो जाए तो कोई तागेवाला ही आकर मेरी बाह पकडेगा न। अगर कोई सवारी मुझसे ऊच-नीच करे तो मैं तागेवालो के सिर पर ही उसका जवाब दूगा न। अगर अड्ड का ठेकेदार फीसें बढा दे ता हम तागेवाला का एकसाथ होकर ही लडना-मरना है न। हमारा तो बस अब उनसे ही भाईचारा बिरादरी है।'

"फिर भी, बेटा! अपनी जात का रोब तो रखना होता है न।

"नही, चाचा! हमारा रोब तो आपस म मिलकर बठन मे ही है, एक दूसर से बडा बनन म नही। आप तो सबको रोटी कमान से मना करत फिरत हैं। आप कहते है बस अपनी अकड मे घर बैठे रहो, चाहे भूखे मर जाओ। उसी दिन आप कह रहे थे 'निशाना' तहसीलदार का अदली क्या बन गया है? सुसरा खत्तरके तहसीलदार के बतन माजता फिरता है।"

बहादुर सिंह चुप हो गया। पल्टन में दिनों में वह बहुत बड़ा गुस्ताख हो गया था और जिसने यह गुस्ताख किया था वह इसे अपनी रोटी कमाने के लिए, सांस लेने के लिए जीवित रहने के लिए आवश्यक समझता था।

कुछ साल और बीत गए। बहादुर सिंह अमृतसर गया। शहर के निकट नाशपाती का एक बाग था। बाग वाले ने इसमें पांच छह लड़के रखे हुए थे। चार पांच लड़के चूहड़े थे और एक सिख। बहादुर सिंह उनमें नौकरी करने के लिए बैठ गया। सिख लड़का अकेला होने के कारण उन चूहड़ों में बहुत परेशान था। वह सब उसका मज़ाक उड़ाते किन्तु वह अकेला होने के कारण उनका कुछ नहीं कर सकता था। उसने कभी चूहड़ों के साथ बराबरी में बैठे होना नहीं सोचा था इसलिए वह उनमें से किसी का अपना हाथ भी नहीं मिला सकता था। उस समय भी उनकी आपस में कुछ गर्मा-गर्मी चल रही थी। एक लड़का उससे कह रहा था

'अपनी आटे की परात दूसरे छप्पर के नीचे कर ले, यार! नहीं तो फिर कहेगा छू गया।'

"उस छप्पर में, बेवकूफ, चूहे हैं, तू अपनी परात मेरी परात से जरा परे हटाकर रख ना।"

'परे तो धूप है, धूप में हम अपना आटा गूंधा लें।'

और फिर सबसे बड़े रखवाले ने उससे कहा 'तू जवान! सारे दिन गूंधने पकाने में रहता है बाग का फेरा कब लगाता है? आज आएंगे शाहजी, उनसे यह बात भी करते हैं।" चूहड़े लड़कों में से तो कोई एक ही सबकी रोटी पका देता था और बाकी सब मजे से फेरा लगाते रहते थे, पर सिख लड़के को हर बार अपने अकेले के वास्ते अलग खाना पकाना पड़ता था। उसकी बातचीत बहादुर सिंह को कुछ अपने-जैसी लगी तो वह उससे बात करने लगा

"छोकरे! तुम कौन जात हो?"

"चट्ठा"

बहादुर सिंह का अनुमान ठीक निकला।

"किस गांव के हो?"

"चमक्या ।"

"तुम्हारी जमीन-मकान कहा गया ?"

"जमीन गिरवी पडी है ।"

"तुम्हारे बाप अब क्या करते हैं ?"

"वह गुजर चुके हैं ।"

इस लडके को ऐसे बेतरह फसा हुआ देखकर बहादुर सिंह का दिल बिंध गया। अगर वह इस लडके को वहा से निकाल कर अपने घर ले जाए तो उसकी जिंदगी आसान हो सकती है। बहुत बरस पहले वह चटठा की एक बहू को इस तरह गलत जगह म रहते देखकर अपने घर ले गया था। पर अब तो दिन ही कुछ और तरह के आ गये हैं। हर ओर लोग उसके हाथा से निकल कर बाहर जा रहे थे। कही चटठे चटठा के विरुद्ध वोट डाल रहे थे, कही कोई चटठा तागा चलाता था और उसकी पत्नी धीमरो को खाना पकाकर खिलाती थी कही कोई चट्ठा लडका खत्री तहसीलदार के बरतन माजता था। हर एक का अलग-अलग दिशा की ओर मुह था। बिरादरी की कोख से निकलकर लोग अनजानी जगहा मे साझेदारी जोड रहे थे और इस रखवाले लडके की तरह जो नही जोडते थे, इन अनजान जगहा म रिलत मिलते सही थे, पर परेशान रहते थे। नही, वह लडक को घर नही ले जाएगा। एक दो लडका को घर ले जाने से अब उसकी बिरादरी की एकता और इज्जत कायम नही रह सकती थी।

बहादुर सिंह को ऐसा लगा जैसे बहुत दरिया मे उसका भसे का गटठर खुल गया हो। एक एक तिनका अपने आप दरिया के प्रवाह मे बहता जा रहा था। एकाध तिनके को पकडकर अब क्या बन सकता था ?

सुभाष मसा

काले हसो के पंख

"यार! आदमी म कुछ तो शम ानी चाहिए। किसी बूढ़े बुजुग का ज़रा तो लिहाज़ करना चाहिए कि नही। इस आदमी न कभी किसी की बात सुनी हो तब न गाव की नाव काट दी ससुरे ने।"

"ऐसी तुम लोगा की नाक है जो साली ऐसे ही कट जाती है झट से?" चौपाल म मचे हुए शोर मे धीदा सिंह ने अपने यह आग जैस बोल भीड पर फैंके तो चारो तरफ खामोशी छा गयी। दा तीन वुजुग तो कान दवा कर चलते बने।

'ओ धीदे! कजर विना पूरी बात जाने फिजूल मे मत बोला कर। यू ही नाई की बछिया की तरह वुजुग आदमिया की बात मे मत डकराया कर।"

'तुम सब अक्ल वालो का मैं खूब जानता हू' पड के ठ्ठ पर बैठते हुए धीदा उसी गस्से के स्वर मे बोला।

'ऐस न बोले जा। बात पता भी है कुछ?' आखिर बिशन के लडके करतार ने पूछ ही लिया।

बात के तुम्हें ग्रथ बाचने हैं क्या? वह इन्दर के लडके घुल्ले की बात करते होगे।' उसने एक गहरा सास लेकर कहा। 'पहले तो तुम मुह सिर लपेट कर गुड वाले कोठे मे पडे रहत हो फिर बात का बतगड बनाते हो और हाकते हो लम्बी चौडी शम तो नही आती तुम लोगो को? फिर उसने ऐसी क्या कयामत कर दी? मैं तो कहता हू वह कोई देवता था, जिसने किसी की ज़िदगी बचा ली।"

वास्तव म कुछ दिन पहले तक इदर का पुत्र घुल्ला गाव का सबसे तगडा जवान था। चौपाल मे बैठने वाले इज्जतदार वुजुग लोग उसे आवारा कहकर

बखानते थे। घीदा से उसकी गहरी दोस्ती थी। गाव वालो की दृष्टि मे वह "चोर-चोर मौसेरे भाई थे"। सूरज डूबने पर दारू पीकर घुल्ला के घर के बाहरी हिस्से मे जा कर सो जाना या गलियो मे खडे होकर अनाप शनाप बोलते रहना ।

यही गुडई थी जो घीदा और घुल्ला करते थे। गाव की बहनो-बेटियो की ओर उन्होंने कभी ताका-झाका तक न था। पर गाव का प्रत्येक सज्जन व्यक्ति अपनी बेटियो और बहनो को घुल्ला और घीदा की गली से होकर गुजरने को मना करता था। पडोसी उलाहना देते थे कि कल रात को घुल्ला सिंह हमारे दरवाजे मे खडे होकर शोर मचा रहा था। घुल्ला ने घीदा से अनेक बार कहा "यार घीदा! हम तो हर आदमी साला बदमाश समझता है और अपने आपको समझते हैं साले पूरे सत्यवान। खुद तो साले चरी काटने गयी हुई औरतो को भी नही छोडते।"

"भाई बात य है—यह तो बिलकुल कजर की औलाद क्कड जसे दिल वाले लोग हैं। तेरे मन मे है भई ये किसी के दुख दद के साझीदार हैं ना इस बात पर तो बस लकीर ही फेर दे। ये साले ता ऐसे है कि मुह लिहाफ से ढक लेगे और माला वाला हाथ निकाल लेगे लिहाफ के बाहर और लिहाफ मे हागी सूअरी जसी पली पलाई लुगाई।" घीदा गालियो मे लपेट कर सारे समाज का हाल सुना देता, और घुल्ला खी-खी कर के हस पडता ।

घुल्ला खाते पीते घर का था। पहले तीन भाई थे, पर अब दो ही रह गये थे, क्योकि पार सात उसका बडा भाई दारू के नशे मे गाडी के नीचे आ गया था। पिता उसका अच्छे तगडे शरीर का आदमी था। इलाके मे चार आदमियो का सिरमौर माना जाता था। एक उसकी मा थी और एक उसकी भाभी जो विधवा हो चुकी थी। जमीन काफी थी। पर घीदा ले देकर घर म अकेला ही था। न माता पिता, न बहन भाई। कुल पाच बीघे खेती। पर जट्ट का दिल सेर पक्के का था।

घुल्ला के पिता ने उसे घीदा से मिलने मे बीसियो बार मना किया था, जमीन से अधिकार रहित कर देने की धमकिया दी, पर वह न कहा मानने वाला था, न उसने कहा माना ।

"भाई घीदा ! हर आदमी साला हमारी यारी को देख क्या जलता है। मेरी समझ मे यह बात कुछ आती नही।' घुल्ला घीदा से प्रश्न करता।

"भाई सरदार। हम पीते हैं दारू, राम भी मर करते हैं यारों और यारों म उठाते हैं इन बड़े सूरमाओं की करतूत पर से पर्दे। इस गाना को तो जाना भी हुआ।"

कुछ दिन पहले एक रात को धीरा के दरवाजे पर खटखट हुई। दो बजे का समय था। जब धीरा ने दरवाजा खोल कर देखा तो धुल्ला खड़ा था। बिखरे हुए बाल, घबराया हुआ चेहरा, सांस चढ़ा हुआ—धीरा उसकी यह दशा देख कर घबरा गया।

'अबे कंजर! क्या हो गया ?"

'तू मुझे जल्दी से जल्दी घर पर ओवरकोट की गाड़ी म सवार करा के आ।"

"अबे बात तो कुछ मालूम हो।" धीरा ने ध्यान से देखा तो उसे पता लगा कि धुल्ला के पीछे कोई औरत भी है।

अबे यह कौन है ?' उसने घबरा कर पूछा।

'भाभी है अपनी, नन्द कौर।"

'बात क्या हुई?" धीरा ने फिर पूछा।

'तू चलता है या नहीं यार? बात फिर पूछ लेना।'

धीरा ने कंबल अपने कंधों पर डाल लिया, गंडासा हाथ म ले लिया और तीनों स्टेशन जाने वाले रास्ते पर चल पड़े।

"अब कुछ बता तो सही।' धीरा उत्सुकता से बोला। भाभी नन्द कौर की मौजूदगी उसे बेचैन किए दे रही थी। वह नहीं चाहता था कि धुल्ला सचमुच बदमाश बन जाए।

"यार ईश्वर मर गया साला ' धुल्ला रूआंसे स्वर म बोला।

'कुछ पता तो लगे "

'ले फिर सुन ही ले

और जो कुछ धुल्ला ने बताया वह सुन्न कर देने वाला था। उसकी बातें सुनकर जैसे हवा सुकड़ गयी।

देविन्दर सिंह

यात्रा

नहीं, यह सौ साल से सोयी हुई किसी शहजादी की कहानी नही है यह सिर्फ पन्द्रह बरस से सोई हुई पदमा की कहानी है।

सौतेली मा के राज म रुलती हुई पदमा जब कस्बे के एक अमीर दुहेजू लाला फतहचन्द से ब्याही गई तो ब्याहले कपडों में लिपटी पदमा ने सोचा था कि अब उस के अगो म जवानी जागेगी। बचपन तो मरी हुई मा के साथ ही मर गया था पर जवानी ने तो अभी आखें खोली थी

और पदमा ने आखें झपककर देखा—दुहेजू की सेज पर सिर्फ खर्राटे थे जो फूलो की तरह खिले हुए थे—और पदमा आखें मीचकर फूलो की उस सेज पर सो गई।

और यह पन्द्रह बरस से सोई हुई पदमा की कहानी है

न गले मे जमी हुई सासें न दीवारो से पोंछे हुए आसू न छाती मे हिलता हुआ कोई सपना।——शायद सोया और मरा आदमी एक जसा होता है पदमा को कुछ भी पता नही था। वह बस सोई हुई थी।

बस सोते हुए उसके कानो म आवाज आई "यह भी नुकसान उठाना पडेगा। गुड देखकर मक्खिया भी रिश्ता गाठ लेती हैं। कहती है भाईजी, मेरे बेटे की नौकरी आपके शहर मे लग गई है। वह भला मामा का घर छोडकर बाहर कहा रहेगा। कोई कमरा-कोठरी उसे दे देना "और लाला फतहचन्द दुखती हुई दाढ मे रुई का फाहा रखकर कह रहे थे, 'न मा ने जन्म दिया न बापने आज मतलब पडा तो बहन बन बैठी कहती है, लाला! मेरी मा तुम्हारी मा की धर्म-बहन थी। उन्होंने हरिद्वार से आया हुआ पेडा आधा-आधा आपस मे बाट कर खाया था कोई पूछे भई अब तो उन दोना की हडिडया भी हरिद्वार पहुच चुकी हैं पर वह पडा अभी तक नही खत्म हुआ? यह पडा कैसे फलता गया?"

और पदमा को जो हुकम मिला, उसने पालन कर दिया। घर की पिछली कोठरी, जिसका पिछली नाली वाली गली से भी रास्ता था, झाड दिलवा कर धुलवा दी। एक वान की खाट भी डलवा दी और यद्यपि वह यह नही जानती थी कि उसका पति इस बिन बुलाये मेहमान को सिर्फ रहने की जगह ही देगा या साथ मे खाना भी–उसने यू ही दाल की एक मुट्ठी भी ज्यादा चढा दी।

पर जब शाम के समय दुकान बन्द कर लालाजी घर आए तो उन्होंने दाढ के दर्द का जिक्र करने की बजाय कहा, "मैंने कहा, सुनती हो, इसका तो पर ही भागवाला पडा है, सवेरे दुकान पर जा रहा था तो सबसे पहले यही सामने पडा था और आज ही अचानक आटे का डिपो मिल गया है "

"और रोटी?"

"कहता था कि रोटी की तकलीफ नही दूगा बस जब तक सरकारी मकान नही मिलता रात का ही बसेरा चाहिए वह तो किराया भी देने को कहता है पर तुम लडके को चाय-पानी को पूछ ही लेना उसका पर अच्छा पडा है।"

पर यह कहानी पैसे-पैसे के लिए जागने वाले लाला फतहचन्द की कहानी नही है, पन्द्रह बरस से सोई हुई पद्मा की कहानी है।

कोई किसी को जगाता है तो आवाज़ देकर जगाता है या हौले से कधे से हिला कर जगाता है। ईश्वर को न जाने क्या सूझी, उसने सोई हुई पदमा को जगाने के लिए बडे ज़ोर से उसका पैर खींच दिया, इतना कि पैर मुड गया, मोच आ गई और पदमा की चीख निकल गई।

यह एक सरकारी छुट्टी का दिन था, जब सरकारी दफ्तर बन्द होते हैं, पर शहर की दुकाने खुली होती हैं। सो, लाला फतहचन्द अपनी दुकान पर थे और घर का मेहमान–किरायेदार तिलक घर पर था। उसने आगन से आती हुई पदमा की चीख सुनी तो दौडकर आया और गीले आगन मे फिसल कर गिरी हुई पदमा को हाथ का सहारा देकर उठाया। फिर भीतर कमरे मे ले जाकर चारपाई पर लिटाया और उसके पैर की गर्म तेल से मालिश करने लगा।

तेल हौले-हौले ठडा हो गया, पर तिलक की दोनो हथेलिया गर्म हो गईं और पदमा की एडी तक उसका लहू गर्म हो गया।

पदमा चौंककर पन्द्रह बरस लम्बी नीद से जाग उठी

जागी—ता सामने तिलक था। नजर परे की तो खाली दीवार पर भी उसी की परछाई थी। घबराकर आखें मूद ली, ता वह बन्द पलका मे से होकर अन्दर आखो म आ चुका था।

जो कुछ बाहर था उससे बचा जा सकता था लेकिन जो कुछ अन्दर आ चुका था, पद्मा उससे बचकर कही नही जा सकती थी, इसलिए उसे बचने का रास्ता न मिला। तब उसने अपने सिर को सहारा देने के लिए तिलक की छाती की आर देखा

तिलक ने दोनो हाथा से कसकर पदमा का सिर अपनी छाती से लगा लिया और पदमा आखें नीची कर के धरती पर गिरे हुए ज़िन्दगी के अथ खोजने लगी।

यह बहुत दिन बाद की बात है जब एक दिन तिलक ने कहा "पदमा ! जिन्दगी नही, लेकिन इस घर की दीवारे मुझे घूरती हैं मुझे इस घर की दीवारा से बचा लो।"

'न यह घर मेरा है, न दीवारे मेरी, जो तोड सकू" पद्मा बिलख-सी उठी।

"फिर घर वाला को घर की दीवार लौटा दो—" तिलक ने हलीमी से कहा।

पर सस्कारो को भले ही कोई बात कितनी ही हलीमी से कही जाए उनके माथे पर त्योरी पड जाती है। पदमा ने घबराकर अपने माथे पर आया हुआ पसीना पाछा—शायद दुपट्टे की किनारी से सस्कारा की त्योरी पोछ दी—और फिर "हैरान-सी" तिलक के मुह की आर देखने लगी।

लोग दिन के उजाले मे राह ढूढते हैं—पर जैसे ही सूरज चढता, पदमा को लगता उसके चारा ओर अधेरा फैल गया है और उस अधेरे मे सारी दुनिया की आवाज़ें उससे ऐसे टकराने लगती कि उसके हर खयाल के पैरो को ठोकर लग जाती और वह घबराकर परो को मलते हुए फश पर बैठ जाती तो कितनी ही देर तक बैठी रहती। पर रात को जब दुनिया की आवाजें कही डूब जाती उस खामोशी म उसके मन की लौ ऊची हो जाती और वह कोई राह ढूढने लगती।

और एक रात सपने मे उसे एक राह मिल गई—राह जसे साक्षात उसके पैरा के आगे आ गई। सामन किसी मन्दिर का कलश चमक रहा था। उसने देखा,

मन्दिर के चरणो के निकट बहती हुई नदी मे उसने हाथ-पैर धोकर कुछ जगली फूल तोडे है और फिर उन्हें पल्ले मे डालकर वह मदिर की ओर चल पडी है।

सवेरे यह सपना जसे उसके मुह पर लिखा हुआ था। लाला ने तिजोरी की चाभी उसके हाथ से ली तो पदमा के हसत-हुए चेहरे की ओर देखता रह गया। पद्मा ने सपना सुना दिया। पर जिस बात का ध्यान पद्मा को नही आया था, लाला को आ गया। बोला, 'यह तो, मैं कहता हू देवी ने आप आकर मेरा चढावा मागा है। पिछले दिनो जब गोदामो की तलाशी हुई थी, मैंने अपने मन म मानता मानी थी कि मेरा भरा गोदाम अगर पुलिस वालो के हाथ स बच जाए तो मैं देवी का प्रसाद चढाऊगा। गोदाम भी बच गया, मैंने माल भी ब्लक कर दिया, पर अभी मानता पूरी करना रहता है।"

लाला ने पद्मा से कहा कि वह जाकर देवी को प्रसाद चढा आए मुश्किल से सौ कोस का रास्ता है और गाडी सीधी जाती है

"मैं अकेली ?" पद्मा ने रास्ते की ओर देखा और पैरो की ओर भी। पैरो के आगे अभी भी सस्कारो की दहलीज़ थी पर एक पैर उठाते हुए उसने कहा, "अगर साथ तिलक चला चले "

अगर वाली बात कठिन नही थी, लाला ने मान ली, और पदमा के कापत-हुए-से पैर यात्रा पर चल दिए .

गाडी ने जब शहर के प्लेटफाम को पीछे धकेल दिया तो सारे का सारा शहर पद्मा के मन से पीछे सरक गया—पीछे न जाने कहा ।

राह वही थी, पद्मा के लिए भी, और तिलक के लिए भी। पर गाडी जिस भी स्टेशन पर रुकती, पद्मा तो लगता उसकी उम्र का एक बरस गाडी से उतर गया है और तिलक को लगता कि उसकी उम्र का एक बरस अभी इस स्टेशन से गाडी पर चढ आया है।

इस यात्रा के पद्रह स्टेशन थे और जब देवी के मन्दिर वाले स्टेशन पर गाडी पहुची, पद्रह स्टेशनो को पार करके तो उस अनजान पहाडी गाव मे उतरते समय पद्मा की उम्र पद्रह बरस छोटी हो गई थी और तिलक की पद्रह बरस बडी।

तिलक शायद पता लेकर आया था, इसलिए गेस्ट-हाउस का रास्ता पूछकर उसने अपना और पद्मा का सूटकेस उठा लिया।

"और मन्दिर ?" पद्मा ने ध्यान दिलाया तो तिलक हंस पड़ा, "पूजा करने जाएंगे, लेकिन भटकते हुए मन से नहीं सहज पवन की तरह जाएंगे आज, कल या परसों।"

पद्मा ने एक बार दूर दिखाई दे रहे मन्दिर के कलश की ओर देखा, फिर पास ही साथ चल रहे तिलक के मुंह की ओर—और फिर ताजगी भरी पहाड़ी हवा का एक गहरा ताजा सांस भरा।

रात ठंडी थी। गेस्ट हाउस के चौकीदार ने कमरे में चीड़ की छिपटियां जला दी थीं जिनका हलकी-सी महक वाला धुआं आधी रात तक पद्मा और तिलक के अंगों से लिपटता रहा अंगों की महक में मिलता रहा।

कोई चौथा पहर था जब पद्मा ने कहा, 'तिलक! तुम्हारे तन के मन्दिर तक आकर मैं पाप-पुण्य से मुक्त हो गई हूं तुम सच कहते थे, वहां उन दीवारों में मैं पाप-पुण्य से मुक्त नहीं हो सकती थी।"

कौन जाने तिलक मन्दिर था और पद्मा यात्री था पद्मा मन्दिर थी और तिलक यात्री—पर सवेरे जब वह जागे तो दोनों के बदन में एक दूसरे के अंगों की महक प्रसाद के समान पड़ी हुई थी।

पद्मा हंस-सी पड़ी "मन का यह सच कैसा है कि इसे मैं दुनिया में किसी को नहीं बता सकती।"

तिलक ने पद्मा के होंठ चूमे, फिर कहा 'सच कहने वाले को लोग पैगम्बर कहते हैं पर सच सुनने वाली उम्मत कहीं नहीं होती ' फिर पूछा, "कल, परसों या चौथे वापस जाना होगा ?"

पद्मा के अंग कमल-पुष्पों की भांति प्रफुल्ल थे मन भी—बोली, "अब वहीं भी जा सकती हूं वहां भी, जिस जगह को लोग घर-संसार कहते हैं। अब मैंने एक मन्दिर की यात्रा कर ली है। बाकी रहती उम्र को इस यात्रा का पुण्य लग जाएगा।'

तिलक कुछ देर चुप रहा——शायद अपने मन में उतर गया। फिर बोला नहीं पद्मा! पुण्य पत्थर नहीं है जिसे जड़वाकर सारी उम्र गले में डाले रहेंगे

पुण्य तो रोज ताज़े फूल की तरह खिलता है और रोज मन्दिर मे ताज़े फूल की तरह चढाया जाता है।"

लोग पद्मा और तिलक के सबध म क्या-क्या कहते हैं मैं नही जानता। मैं केवल इतना जानता हू कि वह दानो हृदय की यात्रा पर गए हुए यात्री थे जो लौट कर नही आए। हृदय की यात्रा पर गया हुआ कभी कोई लौट कर नही आया।

जसवन्त सिंह विर्दी

आग

जब मैं रात को शहर पहुचा, तो शहर वीरान था। कही भी राशनी नही थी। मैंने कभी बिना रोशनी की रात की कल्पना भी नही की थी। राशनी-रहित रात को दखकर मुझे रात की विपन्नता पर बहुत तरस आया।

— रात फिर भी रात है" मैंने सोचा "पर रात उजली ता हो।"

पर नही। शहर भर का समूचा शरीर रात की गहरी काली चादर मे छिपा हुआ था। मेरा सास घुटने लगा। पर रात से बचकर मैं कहा जा सकता था? कहा जाता?

मेर सामने सारे शहर की सुनसान काली सडके खुली हुई थी और दरवाजे बन्द थे। शहर भर के दरवाजे वन्द। सटका पर चलकर मैं चाहे जहा भी जा सकता था, पर मैंने देखा कि हर सडक एक दूरी तक जा कर किसी एक दरवाजे के सामने दम तोड देती है। इस शहर मे सडका की मंजिले भी निश्चित हो गयी थी। मैं चकित हो गया।

मैं बहुत दूर से इस शहर की ख्याति सुनकर आया था। पर अब मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मैंने व्यथ म यह सफर किया।

पर, अब मैं कहा जाऊ?

रात गहरी हो रही थी और अकेलेपन का सन्नाटा, ठडी हवा की भाति मेरे शरीर को वेंधे जा रहा था।

"मुझे कही न कही जाना चाहिए' मैंने सोचा 'सडक तो मेरी मंजिल नही है।" और मैं तजी से आगे वढकर एक मुहल्ले म प्रवेश कर गया। मेरा खयाल था कि मैं किसी एक घर के दरवाजे पर दस्तक दूगा और अतिथि बनने का

गौरव प्राप्त करूगा। पर मेरे सामने जो मुहल्ला सास ले रहा था, उसमे दरवाजे वाला कोई मकान नही था।

इन मकानो के दरवाज़े कहा गए?" मैंने एक बुजुर्ग से पूछा।

"दरवाज़ा वाले मकान शहर की दूसरी तरफ हैं" बूढे ने मुस्कुरा कर कहा, और मुझे अपनी झुग्गी म ले गया। यह झुग्गी एक कमरे का ही सैट थी और बूढे ने अपना बिस्तर धरती पर ही बिछाया हुआ था। मुझे यह जगह और मकानो से अधिक सुरक्षित प्रतीत हुई, वहा मैं फैलकर बैठ सकता था और जहा जी चाहता सो सकता था, लेट सकता था। किन्तु यदि घर मे स्त्रिया होती, बेटिया होतीं, तो हर समय स्कैंडल बनने का खतरा बना रहता।

जवान लडकिया के बीच उठ-बैठ कर आदमी अपनी मजिल भी तो भूल जाता है पर मेरी मजिल ही कहा है? क्या बेकार आदमी की भी कोई मजिल होती है?

बुजुर्ग ने झुग्गी के बाहर सरकडों की बाड लगाई हुई थी और उसका माल असबाब कुछ झुग्गी के बाहर और कुछ अन्दर बिखरा पडा था। मैंने अधेरे में दूर तक गौर से देखा। यह स्थान किसी महाराजा का कोई पुराना बाग था, उजडा हुआ। इस उजडे हुए बाग को इन लोगो ने अब आबाद करने का प्रयत्न किया था। निष्फल प्रयत्न। 'कभी यह बाग महाराजा के हास विलास का क्रीडा-स्थल रहा होगा, पर अब यहा रोशनी तक भी नही है'—मैंने सोचा।

मुझे इधर-उधर देखते हुए देखकर उस वृद्ध ने कहा—"इस घर मे न आग है, और न औरत।"

'क्या?" मैंने अकस्मात पूछ लिया, आश्चय से।

"जिन घरो मे आग न जलती हो, उनमे औरत नही रह सकती।" वृद्ध ने सरगोशी में कहा, जैसे कोई तिलस्मी भेद खोल रहा हो

"इस मे क्या भेद है?" मैंने कुछ भी न समझते हुए मूर्खों की भाति सहज भाव से पूछा।

उसने कहा—"इसमे भेद की कोई बात नही है।"

"कोई भेद ता होगा ही ।"

"भेद काहे का? जिस घर म आग नही जलती, उस घर मे औरत कैसे रह सकती है? [वह किसने कहा था कि औरत भी एक आग ही है, पर यह आग घर की आग से ही कायम रह सकती है ।] आग के बिना घर कैसे उजड जाते हैं ।
इसके बारे मे मुझे अधिक सोचने की आवश्यकता नही थी ।

अगले क्षण ही मैं उससे पूछ रहा था 'आप गुजारा कसे करते हैं?"

माग-ताग कर' उसने बेझिझक कहा ।

गुजारा कर लते हैं ?"

"वडे मजे से" बूढे ने कहा "बल्कि कोई चिन्ता ही नही रही ।" और वह मुस्कुरा उठा । मुझे लगा जसे उसके स्वर म व्यग का तीखापन हो । मैंने साचा इसके घर मे नही तो इसक अन्तर मे जरूर कोई आग जलती होगी—पर उसका सेंक कैसे अनुभव करू?

इस शहर के सवध म मेरे मन मे बहुत उम्दा "इमेज" बना हुआ था, पर अब मैं इस शहर के सबध मे और ही शब्दा म सोच रहा था । किसी भी शहर म पहुचने पर सबसे पहले उसकी रौनक और रोशनी का अहसास हाता है । पर कहा?

अगले कुछ क्षण हम बिलकुल खामोश रहे । उसके बाद के कुछ क्षणो म मैंने महसूस किया कि उस ठिठुरती हुई रात के कधो पर सवार होकर कुछ स्त्रियो के गाने का स्वर हमारे पास पहुच रहा था । गीत के बाल स्पष्ट नही थे । पर जब ध्यान से सुना तो एक-एक अक्षर स्पष्ट हा गया ।

य औरत कहा गा रही है?' मन बूढे से पूछा ।

परले धरा म एक लडकी की शादी है ।

'उस घर म भी आग नही है?"

बुजुग ने कोई उत्तर नही दिया । मेरी ओर एकटक देखता रहा । न जाने क्या मोच रहा था । मैं भी तो उसके सबध मे बहुत कुछ सोच रहा था ।

"क्या सोच रहे हैं? " मैंने पूछा ।

'गाना सुनो ।" वह बाला और उसने बाहर की आर इशारा किया । उसके इशारे के साथ ही गीत के शब्द दुबारा स्पष्ट हाकर थिरकने लगे

दई दई वे बावला ओस घरे, जित्थे अग्ग होव, शहर रोशन होवे । तेरा पुत्र होवे, तेरा दान होवे

(हमे उस घर देना, बाबुल, जहा आग हो, शहर मे रोशनी हो । तुम्हारा पुत्र हागा, तुम्हारा दान हागा)

"गीत, मे भी आग की बात?' मैंने कहा । पर उसने उत्तर नही दिया, सुन्न बैठा रहा, आग से रहित ।

गायन के स्वर फिर थिरक उठे

दिने चानण हाव रात रोशन होवे । दई दई वे बावला ओस घरे तेरा पुत्र हाव, तेरा दान होवे ।

[दिन म उजाला हो, रात मे रोशनी हो देना उस घर म बाबुल, तुम्हारा पुत्र होगा, तुम्हारा दान हागा ।]

बूढा मुस्कराया । न जाने क्या सोचकर मुस्कराया होगा । और मुस्कराकर उसने न जाने क्या सोचा हागा । मैं भी मुस्कराया, पर मैंने कुछ साचा नही, केवल इतना ही कहा, 'इस शहर वाले आप का आग नही देते?"

"आग केवल बडे लागो के घरा म होती है ।"

"और रोशनी?"

"राशनी पैसे से मिलती है ।"

'फिर आप ले क्या नही लेत?"

हम छोटे लोग हैं हम नही मिल सकती ।" और उसने चकरा कर चारो ओर ऐसे देखा जैसे अपने आपको नगण्य महसूस कर रहा हो । जा व्यक्ति अपने आपको नगण्य महसूस करता है उसे और कोई यातना नही दी जा सकती ।

"अब तो देश म लाक राज है और हम सब बराबर हैं', मैंने कहा, माना मैं उसे कोई भेद की बात बता रहा था ।

उसने करुना से उत्तर दिया "लोग कहते तो हैं, पर हमें दिखायी नही देता हमारे घरो म ज्यादा अधेरा है, शायद इसलिए "

"आप कोई काम क्यो नही करते?"

"मागना काम नही है क्या?"

"नही।"

"फिर और क्या किया जाए?" बूढ़े ने मुझे घूर कर देखा। मैं क्या उत्तर देता?

रात घनी अधकारपूर्ण थी और वातावरण मे अब फिर बोझिल निस्तब्धता फल गयी थी। मैं चाहता था कि उस बुजुग को अपनी योग्यता का प्रमाण दू। फिर बातचीत मे रात बिता देने का प्रश्न भी था।

मैंने कहा "कहते हैं पिछले जमाने म भी आग सिफ देवताओ के पास होती थी। केवल देवता ही आग की गर्माई ले सकते थे और घरो मे प्रकाश कर सकते थे।"

"अब भी देवताओ के पास ही है।" बुजुग ने हामी-सी भरी, तल्ख लहजे मे।

"पर आग सदा देवताआ के पास नही रही" मैंने कहा 'लोगो के एक हितैषी शूरवीर ने आग को देवताआ से छीन कर लोगो मे बाट दिया था।"

"उसका क्या नाम था?"

"प्रोमिथियस।"

"अपने देश का था?"

"नही, किसी और देश का था, पर उसने आग धरती के सब लोगा को बाट दी थी।"

"क्या कहने, वाह!" बूढ़े की आखो म चमक आ गयी, आग जसी चमक।

"बाद मे देवताओ ने उसे पत्थरो और जजीरो से बाध कर बहुत यातनाए दी।'

"चडाल कही के।" बूढ़े को प्रचड ज्वाला की भाति गुस्सा आ गया।

"पर प्रोमिथिअस आग को तो लोगो मे बाट ही चुका था।"

"फिर उसका क्या हुआ?" निश्चित रहने वाला बूढा चिन्तित था।

"दिन भर गिद्ध उसका मास खाते, पर रात को उसके जख्म भर जाते।"

"रात मे बडी ताक्त है।"

"आखिर हरक्यूलीज़ नाम के एक बलवान व्यक्ति ने उसे देवताओ की कैद से छुडा दिया।"

"वाह वाह भई, वाह वाह!" बूढा भावातिरेक से उछल पडा और लगा जैसे उसकी आखो की रोशनी से वातावरण चमक उठा हो। उसकी आखो की इस चमक मे मैंने देखा—घुग्गी के एक कोने मे एक कपडे मे लपेटी हुई कुछ पोथिया रखी हुई थी। मुझे उस बढे के भिखारी होने पर शक होने लगा।

"तुम्हारे पास कोई बीडी सिगरेट हो तो पिलाओ" उसने चैन का सास लेते हुए कहा।

"मैं नही पीता।"

"क्या?"

"यो ही जी नही करता।"

"फिर भी "

"मेरे गुर ने मना किया है" मैंने कहा "वल्कि प्रण करवाया है।"

"हू।" वह उठकर खडा हो गया। "जब हम अपनी धरती छोड कर आये थे तब हमने भी प्रण किया था कि जब तक उस धरती को आज़ाद नही करा लेगे आग नही जलाएगे "

"तो यह बात है?"

"हा, पर हम आग का त्याग करके ठडे हो गये और धरती बैरियो के पास ही रही अब भी बैरिया के पास ही है।" और वह बेचनी से कही दूर एकटक देखने लगा।

मैंने बहुत ही सहज भाव से कहा, "आपको धरती छोडना नहीं चाहिए थी वहीं लडकर मर जाना चाहिए था।'

'हा।' उसने तेजी से कहा "पर हमारे बुजुर्गों ने यह बात नही सोची थी "

"धरती लोगो के पास तभी रह सकती है जब वह उसकी रक्षा कर सके।"

हा आ' बूढ़े ने स्वर क्षीण करते हुए कहा "पर अब तो हम बडे निस्तेज हो गए है भिखमगे। भिखमगे का तो कोई एक मुट्ठी अनाज देने का तैयार नही ह धरती कौन देगा।"

यह सूरमाओ का काम है।'

'हा आ ' बूढ़े न फिर हामी-सी भरी।

'और आप के पास तो आग भी नही है।" मैंने उस चुनौती दी।

उस समय मुझे उन लडकियो का गाना याद हो आया जो गीतो म भी आग क रोशनी की कल्पना कर रही थी। पर आग थी कहा ?

'हा आ ' वह फिर बोल उठा "पर हमारा ख्याल था कि हम अपने अन्दर आग जलाएगे और सामन्तशाही को उसकी ज्वाला के हवाले कर देंगे।" उसने एक लम्बा सास लिया और खामोश होकर बैठ गया।

उस समय वह जो कुछ सोच गया होगा उसकी मैं कल्पना भी नही कर सकता। मैं तो केवल इतना ही देख रहा था कि वह कहीं और पहुच गया था—उस धरती पर जो उसकी अपनी थी, जहा रोशनी थी जहा घरो म आग जला करती थी।

मैं चाहता था कि उसे झझोडू, पर मैं चुप ही रहा।

अभी तक भी गीत के बोल रात की खामोशी के कधे पर सवार होकर हम तक पहुच रहे थे।

दई वे दई बाबला ओस घरे जित्थे अग्ग होवे शहर रोशन होवे। तेरा पुत्र होवे, तरा दान होवे।'

"यह गीत हमारी लडकियो ने गढे है। बूढ़े ने कहा। वह बहुत परेशान था—बल्कि बहुत ही परेशान—मैं बयान नही कर सकता।

उस समय वह न जाने क्या सोच रहा था। पर मै सोच रहा था कि यह बूढा जमाने से बहुत पीछे रह गया है। इसके पास न कोई हुनर है न नान का विरसा, न ही कोई घर-बार। यह सारी उम्र माग कर खाने के सिवा और कोई काम नही कर सकता। रात मे उस समय ठड बहुत ज्यादा थी और मैं यह भी सोच रहा था कि अगर मैं शहर की दूसरी ओर बडे मकान वालो के पास पहुच गया होता तो रात आराम से बिता सकता था पर फिर यह विचार आया कि शायद वह लोग मेरी खसट शक्ल-सूरत देख कर दरवाजा ही न खोलते। आजकल मुझ पर कई प्रकार के अपराध भी तो लग रहे हैं।

फिर अगले ही क्षण मैं यह सोच रहा था कि आधे शहर मे उजाला है तो आधा शहर क्यो वीरान है? आखिर क्या?

मैं उस बुजुर्ग से कहना चाहता था कि मांग-माग कर निर्वाह करना तो जीवन का कोई उद्देश्य नही है। या है?

बुजुर्ग कोई पल भर के लिए आखें खोलकर मुझे एकटक देखता था और मुस्कुरा कर फिर आखें बन्द कर लेता था, मानो वह मेरी बात का भेद पा गया हो।

रात आधी से ज्यादा बीत गयी थी और उस जाडे की रात मे वह बुजुर्ग मेरे सामने बैठा हुआ था उसके सासो की गर्मी मैं महसूस ही नही कर रहा था बल्कि वह मुझे गर्माइश भी दे रही थी बुजुर्ग की आखे कभी खुल जाती थी और कभी बन्द हो जाती थी। जब उसकी आखें बद होती तो मुझे रात की वीरानी का अहसास होता। पर जब खुली होती तो ऐसा लगता कि उनकी चमक से कमरे का वातावरण रोशन हो उठा है।

फिर न जाने कब मेरी आख लग गयी।

मै प्रकाश की एक किरन और आग की एक चिंगारी के लिए तरस गया था और प्रकाश रहित रात की विपन्नता पर मुझे बहुत तरस आ रहा था—इसलिए रात को सपनो मे मैंने सब झुग्गियो मे भाबड जलते देखा। मैंने यह भी देखा कि यह भाबड समूचे शहर को अपनी लपेट मे ले रहा है।

सवेरे जब मैं जागा तो मुझे मालूम हुआ कि मैं शहर के हाकिमो की हिरासत मे हू—और रात को सपनो मे सब झुग्गियो मे भाबड जलते देखने के अपराध मे मुझे परिश्रम-सहित-कैद की सजा दी गयी है।

प्रेम गोरसी

अगले स्टेशन तक

उठकर बैठते हुए उसने मा को धीरे से पुकारा। लगता था मा गहरी नींद में थी। उसने दबे पाव जूती पहनी धीरे-से दरवाजा खोला और दरवाजे के बाहर खडे होकर दूर तक अधेरे म गाव के घरो को ध्यान म देखने लगी। किसी किसी घर म बल्ब की पीली रोशनी टिमटिमा रही थी। उसने फिर भीतर की आहट ली और दबे पांव चलकर सीढ़ियो से नीचे आगन म आ गयी, ऊची दहलीज पर पैर रखकर गली म उतर गयी।

डर-डर कर चलते हुए वह बाहर की गली म आयी तो रुखडे के पेड पर से कोचरी चिडिया बोलती हुई उडी। वह कापकर रुक गयी और दीवार से लगकर खडे होकर उसने पीछे मुडकर देखा—कुछ भी साफ दिखायी नही दे रहा था। वह चक्की के पास से घूमकर पक्की सडक पर आ गयी। मोड पर आकर उसने गौर से अधेरे को टटोला पर उसे "नेक" नही दिखायी दिया। वह और आगे बढती गयी तभी उसे नेक की आवाज सुनायी दी। वह थेस की बुक्कल मारे कटीली झाडियो की बाड की ओट म—आगे बढा। "नेक हाय।" वह जसे तडपकर नेक से जा चिपटी और अपना सिर उसने उसके कधे पर रख दिया।' अच्छा चल, तू चल अब बातें मत कर" नेक के बोल ही नही, उस का शरीर भी काप रहा था।

"उधर जाना है टिब्बे की तरफ" नेक आगे-आगे चलने लगा। वह अधेरे की स्याही म भी जसे खेतो वाले कुए को हाथ भर की दूरी पर देख रहा था—कुआ जिसमे उसे रूपा को धक्का देना था, मा के कहे अनुसार उसे धोखा देना था।

पर रूपा इस साजिश से बे-खबर थी। वह प्रेम की मारी तो सोये हुए गाव को पैरो तले रौंद आयी थी, उसे तो घर में आसानी से सास नही आ रहा था। आज ही उसके साथ क्या क्या हो रहा था पहले बापू की ओर से, फिर मा की ओर से

तब वह नल पर मुह हाथ धोकर चौबारे मे आकर अभी शीशे के आगे खडी ही हुई थी कि उसका बापू आ धमका। बापू की ओर देखते हुए उसकी आखो की पुतलिया पीली जद हो गयी। वह काप उठी।

"उस तरफ क्या करने गयी थी?" दरवाजे की ओट मे खडे होकर, एक पाव चारपाई की पट्टी पर रखते हुए बापू ने जैसे दहाडकर कहा। 'तू क्या सोचती है, मुझे मालूम नही? वहा बैठकर किसे रो रही थी मैं भी समझता हू।" गुस्से मे बोलते हुए बापू की दाढी भी काप रही थी। उसने अपना पाव चारपाई की पट्टी से उतारकर नीचे रख लिया। वह बेटी के कधे को झझोडते हुए बाला 'सारा मुल्क जानता है जैसे तूने हमारी इज्जत को मिट्टी मे मिलाया है। कान खोलकर सुन ले, आज के बाद तू दरवाजे के बाहर पाव नही निकालेगी।" वह गुस्से में भरा हुआ तेजी से सीढिया उतर गया। रूपा बदहवास हो गयी। बापू के सामने उससे अपना आपा सभाला नही गया था। अभी वह हतप्रभ-सी खडी थी कि मा सीढिया चढकर ऊपर आ गयी। वह आते ही बेंधती हुई आखा से घूरते हुए बोली 'बैठ जा तुझ से बात करू"। मा के कहने पर वह चारपाई के पावे के पास सुकड कर बैठ गयी। "तेरा बापू क्या कहकर गया है? उसने तुझे उसके घर जाते देख लिया था।" मा की बात सुनते ही उसके पैर कापने लगे और आखो के आगे अधेरा सा आ गया। वह घबराकर बोली "नही कहा गयी हू मैं?"

"तरखानो के घर, और कहा? क्या रखा हुआ है वहा तेरा? तुझे खबर नही कि क्या कुछ हो चुका है? तू कोई बच्ची है जिसे बार-बार कहना पडे? तेरी अकल को क्या हो गया है?" मा हौले-हौले बोल रही थी, जसे दीवारो से डर रही हो। फिर वह भर्रा कर बोलने लगी, "तूने क्यो सबको उजाडने का काम लिया है? तू करना क्या चाहती है? तेरे मन मे क्या है रूपा आदमन? तू कोई ढग का रास्ता पकड। और एक महीने की ही तो बात है तेरा काई हीला हा जायेगा। तूने तो सबके लेख डबो दिये, अब तो सबर कर" बोलते-बोलत मा दुपट्टे से आखें पोछने लगी और चौबारे के बाहर निकलते हुए बाली "तू दीवार से सिर मार मार कर रोयेगी याद रख लीजो बात को।"

वह बैठे-बैठे जैसे धरती मे धसती चली गयी हो। उसे पता नही लग रहा था वह कौन से कुए की गहराई मे डूबती जा रही थी। बापू और मा न जाने कौन से दुर्योधन का रूप धारण करके चौबारे पर चढ आये थे। "मैं आज क्यो वहा जा

बठी? चल अगर जाना ही था तो आगे-पीछे तो देख लेती। शायद बापू न खुद ही देख लिया हो। वह उन क्षणो के बारे मे सोचकर घुरैन लगी जो हाथ स निकल चुके थे। वह तो पिछले कई दिनो से श्मशान की ओर चली जाया करती थी। कीकर के तन पर नित उसकी निगाह टिक कर रही जाती। उसे ऐसा लगता जैसे तने म से दो चमकती हुई आखें उसकी ओर देख रही हो जैसे कोई होले से आवाज देकर उस बुला रहा हो। फिर रूपा और सूखे कीकर के तन म होल-होल फासला कम होता जाता कम होता जाता और उस के पाव शिथिल हो जाते। आज तो जसे उसके सास भी अपन नहीं रहे थे, और वह सास रोके कीकर के पास आकर बैठ गयी थी। कस! कस!! उसके कठ से यह शब्द कठिनाई मे निकले थे। पर सुनसान कब्रो मे म उसकी पुकार का कौन हुकारा भरता। वह भोली शायद यह नहा जानती थी कि कब्रें तो हर हुकारे का निगलने के लिए ही होती हैं। उसने हाथ बढाकर उस धरती को टटोला जहा छह महीने पहले कस की चिता जली थी, जहा उसकी मुहब्बत का चिराग तेजी मे जलकर राख हो गया था। अब तो वहा कुछ भी नही था उस धरती क सिवा जो अब काली पड चुकी थी।"

रूपा गहरे विचारो म खो गयी थी। उसकी यादो न उसकी गिर्द जाला-सा बुन लिया था। कस की सूरत जिस पल भी उसके मन की आखो के सामने उभर आती उसका सारा शरीर जैसे बर्फ-सा जम जाता। बचपन से वह कस के साथ खेलती रही थी। तब वह आज की तरह ठेकेदार लहना सिह की बेटी नहो थी तब तो वह लहन कुम्हार की बेटी हुआ करती थी। तब आज की तरह उनकी ट्रकें नही चलती थी, तब तो वह गधो के ऊपर भट्टे से ईंटें या नहर मे मिट्टी ढोया करते थे। उन्ही दिनो गाव के अधिकाश घरो की तरह उनके यहा भी दिया ही जला करता था और कच्ची दीवारो क लेप उखडे रहते थे। उन उखडी दीवारो की छाया के नीचे वह कस के साथ खेलत हुए बडी हुई थी। स्कूल के बाद वह शहर मे कालिज म पढने लगे थे। उनके इश्क का धुआ गाव की हदें पार कर ऊपर आकाश की ओर उडन लगा था। उन्होने कभी किसी और की आख मे झाककर नही देखा था और उनकी समझ मे सारा जग अधा हो गया था। जब यही हवा घर म बह आयी थी तो मा और भाभियो उसके आगे हाथ जोडकर खडी हो गयी थी। पर उसने उनकी पर-वाह किये बिना कस से अपने प्रेम की हामी भरी थी। फिर उसके भाइयो ने उसे पीछ की कोठरी मे बाध कर बेतहाशा मारा था फिर भी वह टस से मस नही हुई थी।

पर एक और मुसीबत उठ खडी हुई। कस को पिता के अडडे पर बैठना पड गया। कस का पिता पडोस के गाव मे कोठी पर छत डालने गया था और वहा दीवार के नीचे आकर मर गया था। गाव की फसलो पर मजदूरी का काम या तो कस सभालता या उससे छोटा "नेक" जो कस के साथ ही शहर म पढता था। पहले वह और रूपा शहर मे मिलते थे, फिर गाव म फसलो की ओट म मिलने लगे, नहर के सफेदो की ओट मे बैठकर बातें करते रहते। प्रेम मे माती वह औरो से हसी ठिठोली करती चलती। उसकी एडी मे खुभा इश्क का काटा उसे धरती पर पैर न रखन देता। वह तो बावरी सी फिरती थी, भूखी-प्यासी काम-पीडित सापन या हिरनी की भाति। उसने कस को गाव से कही दूर चले जाने के लिए राजी कर लिया—दूर जहा लोगो की आखो से बरसते हुए तीर उन्हें सहन न करने पडें जहा वह उसकी बाहो मे लिपटी समय और स्थान की पहचान भूल जाए।

कस के कहने के अनुसार उसने मा के आगे ब्याह की बात कह दी। फिर क्या था। घर मे कयामत आ गयी। बरसते हुए हाथो की मार के आगे रूपा की देह नीली पडती चली गयी। उसे अधमरी करके बडे भाइयो ने पीछे की कोठरी म डाल दिया। फिर जब बरसो-जैसे कई दिनो के बाद उसने घर की दहलीज पार की तो लोगो की जबानो ने आग बरसा दी। उसके पैरो के तलवे छालो से भर गये और देह ऐसी हो गयी जैसे आरे से बीचोबीच से दो टुकडे कर दी गयी हो। उसे अपने सूरज का मुह दिखायी नही दे सका जिसे इस काले जगल के पहरेदारो ने बोटी-बोटी करके टीले के ऊपर ले जाकर फेंक दिया था। उसके कस का लहू सारे टीले को लाल करता चला गया था।

हौले-हौले वह बाहर निकलने लगी। वह बडे दरवाज़े वाली गली मे से होकर टीले की ओर निकल आती। कभी-कभी वह कस की गली से गुजरते हुए अचानक डर जाती। उसे दीवारो से भय लगने लगता और वह पीछे लौटकर किसी और रास्ते पर चल देती। फिर एक दिन वह अपने आप से हारी हुई कस के दरवाज़े मे खडे होकर भाय भाय करते घर को घूर रही थी—वही घर जो कभी आठो पहर हसी से भरा रहता था। धूल से भरी हुई कासे की थालिया और कटोरे। काली पडी दीवार पर तरेड खाये शीशे मे जडी हुई कस की फोटो। यह सब देखकर, भीतर से उठा रुलाई का स्वर उससे दबाया न गया और उसे चौखट का सहारा लेना पडा। जब सभलकर धीरे से उसने भीतर प्रवेश किया तो दीवार मे लगी अधेर

मे पडी चारपाई से आने वाले शब्दो को सुनकर वह चौंक कर ठिठक गयी। "कौन है, भाई?" अधेरे म ही कस की मा को देखने की कोशिश करते हुए वह बोली "मैं हू, माजी, रूपा।"

उसके बोल सुनते ही चारपाई पर निढाल पडी कस की मा गुस्से मे भर उठ बैठी। उसने जमीन पर पडी हुई लाठी उठाई और उसके सहारे से आगे बढकर बोली *'अरी राच्छसनी! तू अब क्या लेने आयी है?* तेरे भाई मरें। मेरे बेटे को खा के अब क्या ढूढने आयी है? अरी पापिन! " उसने कस की मा के मुह पर हाथ रख दिया और वाक्य पूरा नही होने दिया।

'जो हुआ है मैं जानती हू, पर ऐसे कहकर मुझे और मत तपाओ।" मसोसे हुए मुह से कहकर उसने कस की मा को कधो से पकडकर उसे समझौता करना चाहा पर उसने उसके हाथ झटक दिये। वह जलकर बोली "अरी, तूने इस घर म पैर कसे धरा? अरे, तूने मेरा कलेजा निकाल कर खा लिया, डायन!"

कस की मा की बात के जवाब मे रूपा ने कहना चाहा "ओ मा री, मैंने काहे को खा लिया। मा! मेरा तो अपना कलेजा भी यह जबरे खा गये हैं।"

"अरी, तू इतना प्यार करती थी उसे, उसके कान मे तो डाल देती, सापन! कि दुश्मन तेरे लहू के प्यासे फिर रहे हैं। पर तू क्यो बताती? तेरा क्या गया?"

रूपा ने मन मे कहा "ओ बदी रब्ब की! गया तो मेरा ही सब कुछ है। मेरा अब यहा क्या बचा है? तुझे उससे क्या लेना था?" उसने कस की मा को बाहो म लेकर अपना सिर उसकी गोदी मे डाल दिया और बिलख बिलख कर रोना शुरू कर दिया। कस की मा चुप हो गयी, और उसे चारपाई पर बिठा लिया। आखिर तो औरत ही थी। दोना के दिल तो एक ही मिट्टी के बने हुए थे—और जब कस का छोटा भाई नेक कालिज से लौटा तो वह उसके मुह की ओर देखते हुए गली मे आ गयी थी। इसके बाद वह दूसरे तीसरे दिन लोगो की नजरो से बचकर कस की मा के पास हो आती। कभी-कभी वह उसे थोडे बहुत पैसे भी दे आती। कभी-कभी वह नेक के पास खडी हो जाती। कालिज के बारे मे पूछती शहर के बारे मे पूछती उसकी पढाई के बारे मे पूछती और उसकी आखो म आखें डाल कर देखती रहती जसे वह कस ही हों। उसी की तरह हसता था उसी की

तरह बातें करता था। वह उस के बारे मे साचते हुए टूट-सी जाती। वह समझ नही पाती थी कि वह क्यो चौबारे पर आती थी, बीते दिना की तरह क्यो क्स के घर की ओर देखने लगती थी। दिन प्रतिदिन उसके भीतर जैसे कुछ विकसने लगा था। उसके भीतर जमी हुई बफ की तह वूद-बूद करके पिघलने लगी थी। उसे अपने ही हाथो म से फिर महक आने लगी थी। उसकी आखो मे नया ही सूरज उदय हो गया था और वह नेक के बहुत निकट चली गयी थी। नेक की ओर देखने पर, उसके बराबर खडे होने पर, उसे लगता वह फिर जी उठी है। आज भी वह श्मशान की ओर से अपने आप को घसीटती हुई नेक के घर जा रही थी। घर से गली म निकलते हुए उसे देखकर, उसकी चाची ने, उसकी मा के पास जाकर खबर कर दी थी।

दूसरी ओर नेक और उसकी मा कौन सी सुख की नीद सोते थे। नेक की मा के मन मे जो फनियर फन फैलाए बैठा था, उस से रूपा अपरिचित ही रही थी। मा ने जो पट्टी नेक को पढाई थी उसी के कारण नेक रूपा के निकट हो गया था। नेक की मा उससे सवेरे-शाम कहती "बेटा! लहने के लडको से बदला लेना तेरा काम है, अपने बडे भाई के खून का बदला। मेरे सुलगते हुए कलेजे मे तभी ठडक पडेगी, बच्चे।" मा बेटे ने रूपा को मारकर यह बदला लेने का फसला किया था।

कुछ दिन पहले कालिज से आते हुए नेक को रूपा नहर पर मिल गयी। वह एक दूसरे का हाथ थामे कीकर के झुड की ओर चले गये।

"नेक! तुझे मेरे भाइयो पर गुस्सा नही आता? कस को मारा था उन्होने, उसे टुकडे-टुकडे करके फेंक दिया था।" वह घास पर बठते हुए बोली।

"गुस्सा! मैं मन मे गुस्सा लाकर क्या करूगा। बडा से काहे का वर।" नेक उसकी आखो से पर दूर शून्य म देखते हुए उदास स्वर म बोला। फिर उसे वह फ़ैसला याद हो आया जो उसने अपनी मा के साथ किया था। अपने चेहरे पर हल्की-सी बनावटी मुस्कराहट लाते हुए उसने अपने मन म कहा 'बदला जरूर लूगा, तेरे भाइयो से नही, बल्कि तुझसे। जड तो सारे फ़िसाद की तू है। तू ही मेरे भाई को खा गयी "

"नेक! तुझे अपने भाई की हत्या का उनसे बदला जरूर लेना चाहिए" रूपा अपने अल्हड प्यार के कत्ल के बदले म अपने ही भाइयो के कत्ल करने के लिए नेक को उकसा रही थी।

मैं अकेला लडका काहे को फासी पर चढू जानबूझकर। तेरे चार भाई चारा भरने मारने वाले आदमी ह ।"

किसी से लडकर ही बदला लिया जाता है क्या? कोई और राह नही होती? ज़रा सोच तो ' वाक्य का अधूरा छोड कर वह चुप हो गयी।

नेक उसी तरह शूय म देखते हुए चुपचाप बठा रहा। उसकी ओर देखकर वह फिर बोली ' मैं तेरा साथ दूगी, नेक। तू हा कर। ल मेरा हाथ पकड।" उसन नेक की ओर अपना हाथ बढाकर उस का हाथ पकड लिया। हाथ के पकडते ही नेक शरीर मे एकाएक एक चकार-सी गुज़र गयी और वह जल्दी स उठते हुए बाला 'अच्छा कल सवेरे तुझे बताऊगा।"

घर आकर नक ने यही बात मा के आगे दुपटटे की तरह बिछा दी थी। मा न बडी सफाई से इस दुपटटे की तह करत हुए नेक को तरकीबें बतायी थी, 'इस रडी से कहिया कि रात को वह बाहर टीले के पास मिल सुन ले ध्यान से।

नेक का मा की बात रत्ती भर भी हल्की नही लगी थी—"हा" और आज वह रूपा से रात को मिलने के लिए कहेगा।

दोपहर ढल चुकी थी सध्या होने वाली थी—पर रूपा छत को खाली आखा से देखत हुए वसी की वसी खाट पर पडी रही। अधेरा फैलने पर नीचे से उसकी भतीजी दो बार आ कर उसे खाना खाने को बुला गयी मा ने भी आवाज़ें दी, पर वह वैसे ही भरी भराई पडी रही। आखिर मा ऊपर आ गयी और उसने उसके सिरहाने बैठकर सिरपर हाथ फेरते हुए कहा "देख, बेटी ! कुछ समझदारी बरतनी चाहिए। अपने भाइया को देख क्या ऐंठ है। पहले तेरे कारन ही इतना झझट उठाना पडा। छोटे को फासी लग जाती तो क्या हाथ आता। थोडा पसा बहाया था तब? तू सोच तो। इसीलिए उन्होंने तुझे पढने से हटा लिया। पराये बेटे की जान यू ही बेआई मौत गयी। बेटी गुस्सा नही करते। तुझे उनके घर जाने का क्या काम पडा है? ' कहते-कहते मा रुक गयी, और सिर के पल्ले को माथे के गिद लपेटने लगी। फिर वह बडे रहस्यपूण ढग से धीमे स्वर मे बाली देख तेरे बापूजी कल परसो मागा जायेंगे, लडके वाला के कई सदेसे आये हैं लडके का बापू भी दो दो चक्कर लगा गया है।" मा की बात वह तुरन्त समझ गयी और चौंकर उठ बठी क्या बात है मा? मुझे सीधी तरह बताओ क्या बात है?" वह खिजी हुई सी बोली।

"बेटी! सारा घर भरा पडा है। लडका बढा नही, बडा सीधा है। ऐसा घर कही मिलेगा? मरने वाली तो मर गयी बिचारी, फिर तेरा भजो से प्यार भी बहुत था " मा खुसर-पुसर करती रही, पर वह अपनी मृत बहन के घर बहू बनकर जाने की बात सुन कर हाफ-सी गयी थी। वह अपने गिद रजाई लपेट कर गुम-सुम हो कर पड गयी ।

तभी उसने छोटी भाभी की आवाज सुनी। भाभी ने आकर मा से कहा, मा जी! जाओ, जाकर खाना तो खा लो बापूजी भी आ गये हैं।' मा यह सुनकर अभी सीढिया म ही पहुची होगी कि छोटी भाभी ने रूपा के मुह पर से रजाई हटाते हुए एक मरोडा हुआ-सा कागज उसे दिया और कहा 'रूपा! यह ले भई जरा देर पहले दीवार के ऊपर से नेक दे गया है तेरे लिए खबर नही क्या है मैं तो बिना देखे यहा ले आयी हू "

दा एक पक्तिया थी। पढकर रूपा निश्चल-सी पडी रही—'बाहर की सडक पर चक्की के पास आ जाना जब घर के लोग पक्की नींद मे सो जाए। मैं तेरा इतजार करूगा। हम बीकानेर की तरफ जायेंगे।

इतना ही नेक ने लिखा था। एक बार तो उस का सास ही रुक गया। वह कैसे उठेगी? पास म मा फिर बाहर का बडा दरवाजा, फिर दरवाजे का मोटा कुडा। कोई कपडा न लत्ता, न पैसा न धेला। पर उसके भीतर जो मुडेर ढह रही थी उसे सहारा मिल गया तो वह हल्की फूल-सी हो गयी।

और अब नेक आगे चल रहा था रूपा उस के पीछे थी। सामने खेतो वाला कुआ था।

"नेक! मैं तो मरी जा रही हू हाथ पाव सुन्न हो गये हैं रुक जा जरा।" रूपा कापते हुए खडी हो गयी।

ठड क्या तुझे खाती है आ, तू चल आगे आगे " नेक सोच मे पडा हुआ, खीझकर बोला। फिर रुक कर खडा हो गया।

"मुझे खेस दे दे एक सिरे से' रूपा बढकर उस से सटकर बोली।

नेक ने खेस का आधा पल्ला उसे दे दिया और वह नेक की छाती से लग गयी और डरी हुई बोली 'वह कौन खडा है?' वह कुए के ऊपर छाये हुए शहतूत के तने की ओर देख कर डर गयी थी।

"कुछ नही, शहतूत है कुए के ऊपर वाला " नेक हौले से बोला।

"अच्छा, खेत वाला वह कुआ इसी मे डूबने का फैसला मैंने आज रात किया था। कल जब दिन चढता तब मेरी लाश इसी कुए से मिलती। मरने को मन करता था और कोई रास्ता भी तो नही दिखायी देता था। तेरे रुक्के ने जीने लायक बना दिया, नही तो तेरी रूपा तुझे कल जीती न मिलती " कहते हुए उसने नेक को कस कर अपने से सटा लिया।

नेक कितनी ही देर तक इसी हालत म खडा रूपा के सासो का स्पश महसूस करता रहा।

"तेरे हाथ कितने ठडे हैं" नेक ने उसके हाथ दबाते हुए जसे बहुत दूर से कहा।

'चलो चल अब, ठड जरा कम लग रही है" रूपा कुए की ओर चलने लगी, पर नेक ने उसे रोक लिया, 'ठहर, इस स्टेशन नही, अगले स्टेशन जाना था। मैं तो अधेरे मे रास्ता ही भूल गया उधर चल, चढाई की तरफ ।"

और नेक उसे अपने पहलू से सटाकर घुप्प अधेरे मे भी तेजी से पक्की सडक की ओर चल दिया।

गुरदयाल सिंह

पराया घर

"जो जवान बेटा-बेटी खाने-पहनने से तरसता हुआ मर जाए उसका ध्यान पीछे छोडे हुए घर मे ही अटका रहता है, बहू रानी।" नन्ती बुढिया ने खचरापन भरी आखो से सावित्री की ओर देखा और अपनी वाक्चातुरी का प्रभाव होते देखकर उसकी बाछो की बारीक झुरिया कापने लगी।

"और बेटी! जो लडकी जीते जी सब कुछ होते-सुहाते, भरे पूरे घर मे खाने पहनने को तरसती रही, वह तो मर कर भटकेगी ही।" नन्ती बुढिया ने घुमावदार ढग से बात शुरू की। "भात भात के लाग दुनिया मे पडे हैं, बेटी। कई तो बाल-बच्चे को खिला पिला कर खुश हाते हैं, कई-कई कमीने खाते हुए के मुह का कौर निकाल लेते हैं। पर मैं कहती हू जो बुरे आदमी औलाद को खाने खेलने नही देते वह दिन रात धधे काहे के लिए पेलते रहते हैं। जो सिफ अपना ही पेट भरकर आदमी को सोना है तो फिर आदमियो और कुत्ते, बिल्लियो मे क्या फर्क हुआ? अब देख मेरे तीन बहुए हैं, कभी कडवा बोल नही बोला। और मैं उन्हें रोकू भी क्यो? आज भी उनका, कल भी उनका, चाहे खाए, चाहे लुटाए। हमें ता दो रोटी खानी है, जब तक देंगे दें, नही, हरिद्वार जाकर बैठ जाऊगी। मैं तो यह कहती हू, बच्चा, भई जो बुरे मा-बाप-ससुरालिये बेटे बेटियो से छुपा छुपा कर रखते है, अगली दरगाह मे उन्हें मैंले के डले चुग चुग कर खाने होगे। हे राम! औलाद से भी दुभात दुनिया का हाल क्या होगा! अच्छा, जैसी भाये, भगवान की मर्जी'

दोना हाथ जोडकर नन्ती बुढिया ने माथे से लगाये और एक लम्बा सास भरकर उठकर खडी हो गयी। सावित्री को मालूम नही था कि बुढिया ने खचरापन भरी आखो से एक बार और अपनी वाक्चातुरी का प्रभाव उसके चेहरे से पढ लिया था और पहले जैसी मदभरी मुस्कान से उसकी गहरी झुरिया काप रही थी।

6—144 आई० अॅण्ड बी०/84

"अम्मा ! बैठो पल दो पल । रोटी खाकर जाना ।"

"बस , जीती रहे तेरे भाई जियें, मा बाप की तरफ स ठडी हवा आये, तेरा ही खा रही हू, बच्ची ! चलती हूँ । बहुए, बच्चिया दुखी हो रही हागी । बच्चे सारे दिन बिचारियो को सास कहा लेने देत हैं ? जाकर खेल मे लगाऊगी, तब रोटी-टुकडे का काम निबटाएगी और फिर म खाली बठ कर क्या करूगी बेटा ? बच्चे भी मुझसे बहले रहते हैं और मैं भी उनके साथ लगी रहती हू । खाली आदमी तो यू ही कोढी होता है ।"

हाफते हुए और वैसे ही बोलते हुए नन्ती चली गयी । सावित्री उसकी काली धारी वाली हरी घघरी और घिसी हुई पुरानी चुनरी की ओर देखती रही । सावित्री को बुढिया सचमुच "देवता-स्वरूप' लगती थी । लोग बुढिया की जैसी निन्दा करते थे, उसे लगा-लूतरी कलमुही और कलजुगनी कहत थे, ऐसी कोई बात सावित्री को उसम नही लगती थी । आजकल कौन सी सास अपनी बहुआ का इस तरह खयाल रखती है ? कौन खाना बनाने के समय बच्चा को बहलाए रखने का फिक्र करती है ? सावित्री की अपनी भी तो सास है न । अच्छी भली, चलती फिरती भी कभी चारपाई से नीचे पाव नही रखती । सारे दिन बैठे-बठे हुक्म चलाती रहती है । वह ऐसे हुक्म देती है माना सावित्री इस घर की बहु नही नौकरानी हो । सब कुछ होते-सुहात उसने कितनी ही बार सावित्री से चक्की पर पसेरी-पसेरी अनाज पिसवाया है । दिन भर उसे घर की उठाया धरी मे ऐसे लगाये रखती है कि सावित्री को तनिक भी कमर सीधी करन की फुसत नही मिलती । पहले पहर उठकर वह सबसे बाद मे सोती है, फिर भी काम खत्म नही होता । अगर कही सावित्री जरा सी देर का पीढी बिछा कर बैठ जाती है तो उसकी सास रानी टेढे-मेढे ढगो से कुछ कह-कहा कर उसे उठा देती है ।

"घरो के काम कभी खत्म होते हैं औरत के इतने काम हैं जितने उसके सिर के बाल एक-एक बीनने लगें तो खत्म होते ही खत्म होगे न "

जबसे सावित्री इस घर म आई थी, वह कभी फुसत से नहाई भी नही थी । अपनी कमल पखुडी जसी बडी-बडी आखा मे सुरमा डालकर नही देखा था उसने, अपने लम्बे मुलायम बाल कभी तबियत से बनाये नही थे ।

"और फिर बनाती भी किसके लिए ?" कभी कभी सावित्री सोचती, "वह भी तो इन्ही मा बाप का बेटा है—इसी घर का जन्मा-पला । और यह घर—न

जाने कैसा घर है जहा काम के सिवा और कोई बात किसी को सूझती हो नही है। सबके सब सिफ काम की बातें ही करते हैं। आज तक सावित्री की समझ मे यह भी नही आया कि यह घर है या दुकान, जहा आधी-आधी रात तक उसका ससुर और उसका पति मूल चद [उसे यह नाम भी "मूल-ब्याज" शब्द जसा लगता —दुकानदारी की बोलचाल का एक शब्द] दिया जलाकर बहिया के मैले-से पन्नो पर अक्षर लिखते रहते हैं। वह मैले तप्पडो पर चुपचाप बहिया के ढेर के बीच बैठे हुए ऐसे लगते हैं मानो धमराज के बायी ओर [जिधर कहते हैं कि नरक का द्वार है] लेखा जोखा करने वाले यम बठे हो। अनेक बार इस तरह उकडू बैठे, कीडा जसे अक्षरा से आखें जोडे, दोनो पिता-पुत्र की आकृतिया सावित्री को अत्यन्त भयावनी लगती, और सचमुच ही वह डर जाती (इसी कारण कई राता को उसे बडे ही भयानक स्वप्न भी आते थे)।

'घर कही ऐसे हुआ करते हैं ?" सावित्री सोचती। उनका—उसके माता-पिता का भी तो एक घर था। खुला आगन, पीछे खुले हुए कोठे, जिनमे कपडे-लत्ते सदूक ट्रक, और बतन पडे रहते थे। पर यहा चार चारपाइया का आगन और पिछली ओर तग दरवाज़ो वाली चार अधेरी-काठडिया जो बोरियो, पीपा, खाली डिब्बो और चाय की बडी पेटिया से अटी हुई थी। छतो म चमगादड और नीचे चुहिया। कोठडियो के चारा दरवाज़े खुले हाते तो सावित्री को दुकान के थडे पर बैठे हुए आदमी उन चीलो-कौवा जसे दिखायी देते जो, वह जब छाटी थी, पीतल की फूकनी मे से, एक आख से, गली के सिर पर शाहजी की तिमजली हवेली की ममटिया पर बैठे देखा करती थी। आगन के दूसरी ओर इन्ही कोठडियो जैसी चार-एक चारपाइया की दरवाजडी थी—ड्योढी—जिसका एक दरवाजा गली मे खुलता था और दूसरा आगन की बायी दीवार के पास। आगन मे चलते फिरते उसे गली मे आता-जाता कोई आदमी दिखायी नही दे सकता था। डयाढी म दिन भर उसकी सास चारपाई बिछाकर पडी रहती, जैसे उसकी चौकीदारी कर रही हो। जब कही दूसरी ओर की काल-कोठडियो के दरवाज़े बन्द होते ता यह अधेरा, तग आगन उसे सचमुच एक जेल के समान लगता।

कभी-कभी वह डरकर छत पर इन्ही कोठडिया जसे कच्चे तग चौबारे म जाकर बैठ जाती। इस चौबारे से उसे सामने के घरा की छतें और ऊची हवेलिया दीख जाती थी। सामने के एक चौबारे की खिडकी मे हमेशा किताब पढता हुआ

एक लडका दिखायी देता। न जाने जब भी वह ऊपर जाती थी तब या हर समय ही, उसके हाथ मे तो किताब होती, पर वह उधर ही देखता रहता। सावित्री कुछ समय तक उसकी ओर देखती रहती। उधर वह लडका किताब को यो ही उलटी-सीधी करता रहता, पन्ने उलटता-पलटता रहता। ऐसे करते हुए वह उसे अच्छा लगता। पर जरा देर बाद ही सावित्री को लगता जैसे वह फिर फूकनी म से चील कौवे देखने लगी हो। उसे अपनी आखें थकी हुई लगती और जल्दी-जल्दी दूर तक फली हुई, टटी फटी पुरानी छता और चौबारो की ओर ऐसे देखने लगती जैसे वह नयी-नयी पिजरे मे बन्द की हुई कबूतरी हो और उड जाने के डर से मालिक ने उसकी टाग मे डोरी बाध दी हो और वह न जाने कब उस डोर को खीच ले ।

"ए बहू ! क्या कर रही है भई ?"

सावित्री का डर उसके आगे आ जाता—डोर खिच जाती। वह सास के पता लगे बिना, तीसरी आवाज से पहले ही, दबे पाव नीचे उतर आती। पर आगन मे पहुचने तक उसका सास चढ जाता, दम घुटने लगता और आखो के आगे धुए जैसा कुछ फैल जाता।

"ऐसे घर मे कोई कब तक रह सकता है ?" सावित्री सोचती और उसे लगता वह इस घर मे अधिक समय तक नही रह सकेगी।

पर आज आज की बात और थी। उसकी सास और ससुर आज सवेरे हरिद्वार नहाने गए थे। उसके और उसके पति के अलावा घर मे कोई तीसरा व्यक्ति नही था। यही घर आज जैसे उसे खुला-खुला लगने लगा था। बुढिया नन्ती भी आज उसके पास स्वय आ गयी थी (सावित्री की सास क होते उसके रूखे और तेज स्वभाव के कारण, कोई भी औरत कभी-कभार ही उनके घर आता थी और अगर कोई आ भी जाती तो उसकी सास से ही बातें करके लौट जाती थी)।

और आज तो सावित्री जैसे "घर वाली" थी।

कुछ तसल्ली से उसने सिर पर चुनरी सीधी की और ड्योढी का दरवाजा बद करके आगन मे आ गयी। उसे अपनी चाल भी आज कुछ अपरिचित सी, पर अच्छी-अच्छी लग रही थी।

आगन में आकर वह मूढे पर बैठ गई। काल-कोठडियो के सारे दरवाजे खुले थे। उसका "मूल ब्याज" (और इस नाम के विचार से अनायास उसे हसी आ गयी) बहियो के ढेर के बीच धमराज के मुशी की भाति गददी पर बैठा आकडे लिखे जा रहा था। वह कभी सीधा हो जाता, कभी फिर कूबड निकालकर वही के पन्ने से आखें सटाकर लिखने लगता। ऐसे ही जैसे शाहो की हवेली की ममटी पर बैठी हुई चील अपने पजो मे किसी चीज को दबोचे हुए उसे तोड-मरोड कर खा रही हो। सावित्री घुटनो पर ठोडी रखे कितनी ही देर तक वहा बैठी उसकी ओर देखती रही (और वह नही जानती थी कि उसके होठो पर उतनी देर वही मुसकान बिखर रही थी जिसे देखकर उसकी चाची कहा करती थी "अरी, ऐसे मुह मत बनाया कर, कम्बख्त, नजर लग जाती है")।

बैठे-बैठे सावित्री ने उगलियो से अपने दोना गालो को टटोल कर देखा, गढे पडे हुए थे। दोनो हाथो की कन उगलियो के पोर उसने गढो मे डाल लिये और धीरे धीरे हसती हुई वह उठकर आगन से लगी हुई पहली कोठडी मे चली गयी। (कन-उगलिया उसने कुछ ऐसे दबायी हुई थी मानो उनके उठाने से यह गढे किसी चीज से भर जाएगे।) चिकने चौखटे वाले भदमैले शीशे के सामने खडे होकर डरते-डरते उसने उगलिया हटायी —पर गढे वैसे के वैसे पडे हुए थे।

वह खिलखिलाकर हस पडी।

"ओ मेरी सफेद कबूतरी! इतनी खीलें न बखेरा कर, इन्हें आखो से चुगना पडेगा।" सावित्री को अपनी चाची की वह आवाज जैसे स्पष्ट सुनायी दी, जो उसने अपने मायके मे ऐसे ही हसने पर कई बार सुनी थी। (और साथ ही चाची के आलिगन की गर्माई के स्मरण से वह निढाल सी हो गयी।)

एक क्षण बाद उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे उसके ससुर ने उसे इस तरह हसते हुए देख लिया हो। उसने सिर से ढलकी हुई चुनरी को सवारकर सीधा किया और पीछे हटकर कोठडी के दरवाजे मे से बाहर की ओर देखा। अभी मूलचद वैसे ही बैठा हुआ रोकड की खतौनी कर रहा था। पर सावित्री का चित्त जैसे ठिकाने न रहा हो। वह निस्पद-सी होकर चारपाई पर लेट गयी और सिर-मुह चुनरी मे लपेट लिया। उसका सिर चक्कर खाने लगा। चारपाई पर मुह ऊपर करके लेटे हुए वह छत की शहतीरियो की ओर देखने लगी। बारीक चुनरी मे से उसे चमगादडो की

खुड्डा मे से झडती हुई मिटटी अपनी आखों मे पडती हुई लगी। सरसो के तेल के दीवा स चिकने पडे हुए आला की गला घ ट दुग ध से उसका सास कठिनाई से आने लगा और उसका जी किया कि वह दौड कर बाहर चली जाए।

"क्या दुनिया के और सब बनिया के घर उजड गये थे ? तुम एक बार जाकर अपनी आखा से वह घर देख तो आती "

"नही मेरी रानी बेटी !" मा ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा था "मा-बाप बेटियो के बैरी तो नही होत मेरे बनवान सजोगो के आगे किसी का क्या बस। असल म तो मरने वाली के मरने से दो बरस पहले स दौड भाग कर रहे थे तेरे लिए। तू क्या जाने, तेरे पिता ने तेरे लिए कौन सा दिल्ली दक्खन एक कर दिया था बेटी ! पर करम बनी किसका बस चलने देने हैं कहते थे मैं अपनी इस बेटी को कोई ऐसा चाद-सा लडका ढूढकर ब्याहूगा जिसे दुनिया दो घडी खडे-खडे देखे । पर विध-माता का लेख न वह मरती, न तुझे " और सावित्री की मा आगे नही बोल सकी थी

जब सावित्री इस पिछली तीज पर अपने मायके गयी थी, उसने अपनी मा के आगे अपना दुखडा रोया था पर लाचार मा करती भी क्या। जब उसने सावित्री को विदा किया था, तभी वह कितना रोयी थी और उसके बाद आज तक वह अपनी इस बेटी के दुख के कारण ही आधी रह गयी थी। यू तो सावित्री के पिता से डरत हुए उसने कभी मुह से उफ तक नही की थी, फिर भी जब कभी उसका मन व्याकुल होता वह उससे लड पडती थी।

"चूल्हे म गयी ऐसी इज्जत आबरू तुमने मेरी सोने जैसी बेटी को कुए मे धकेल दिया। पहली तो बिचारी कज वाली थी उसे तो कोई लेता नही था इसे तुमने कुए म धक्का क्यो दिया ?'

धन्ना मल स्वय यू महसूस करता था जैसे उसने कोई बडा पाप कर दिया हो। पर जब सावित्री की मा उसकी बेबसी की परवाह न करते हुए उसे ऐसी जली कटी सुनाती तो उससे सहन नहीं होती थी। गुस्से मे आकर वह भी गम हो जाता था।

'तेर इन डाकू बनिया के मगरमच्छो जसे बडे बडे मुह हैं। जिसका कोई बेवकूफ सा बेटा भी चार अक्षर पढ जाता है वह बीस हजार नकद माग लेता है। नून-तेल म से दमडी दमडी बचाकर मैं किस किस कजर की पेटिया भरू—अभी तो तीन छोटी बेटिया दिन दिन बडी हो रही हैं, उन्हें भी विदा करना है या नही ?

सारी जमा पूंजी अगर एक ही पर लुटा बैठता तो बता उन्हें किस कुए मे धक्का देता ? फिर जो घर आये को जवाब दे देता तो सारी बिरादरी मुझ पर उगलिया उठाती, फिर तू ही इसी मुह से कहती मुझसे बदनामी नही सही जाती।"

दोनो जानते थे कि दोष किसी का नहीं था। अपनी बिरादरी के रिवाजो के अधीन ही उन्होंने सावित्री का रिश्ता किया था।

अपनी बडी बेटी कल्लो, जिसकी एक आख छोटी उम्र में माता के कारण जाती रही थी, तीस तोले सोना और चार हजार नकद देने का इकरार करके उन्होंने इसी घर मे ब्याही थी। पर अभी उसे ब्याही को दो बरस भी पूरे नही हुए थे कि वह किसी रोग से अचानक मर गयी। उसकी बिरादरी के बडे बुजुर्गों ने कह-कहा कर धन्न का सावित्री का रिश्ता करने के लिए तैयार कर लिया साथ ही यह भी समझा दिया कि सदा से ही यह रीत चली आ रही थी, कोई नयी बात थोडे ही वह करने चले थे। अगर वह न करते तो सब रिश्तेदारो मे और बिरादरी मे चर्चा ता होती ही, जो फटकार, धिक्कार देखने-सुनने वाले करते वह फालतू की यही सब कुछ सोचकर धन्ना मल ने मौकान के लिए आए हुए मूलचन्द से सावित्री का रिश्ता पक्का कर दिया था।

"कुए मे गिरती तुम्हारी बिरादरी, तुम्हारे रिश्तेदार, पर मैंने तुम्हारा क्या बिगाडा था ?"

और सावित्री की इस बात का उसकी मा के पास पछतावे के आसुओ के सिवा कोई जवाब नही था।

" पछतावे के आसुआ से बढ़कर अथहीन चीज शायद दुनिया मे और कोई नहीं है" सावित्री सोचती और आखें पोछकर उठ कर खडी हो जाती (आज तक वह सिवाय अपनी मा के और किसी के सामने अपना दुख कह कर नही रोयी थी।)

अब भी जब उसे अपनी आखें गीली लगी तो वह उठ कर बैठ गई। बैठे-बैठे उसने जोर लगाकर मुस्कुराने का जतन किया और पहले की तरह ही दोना कन-उगलिया दाना गाला मे धुमा ली। सामने टगे हुए पुराने छाज की ओर देखते हुए उसे ऐसा लगा जैसे वह एक बडे-से शीशे म अपना मुह देख रही हो और उसे अपनी मुस्कान ऐसी अजीब सी लगी कि उसे सच म हसी आ गयी।

"हींह ! मैंने कहा, क्या हो गया ?" भिड़े हुए दरवाजे मे से अपनी घिसी हुई ऐनक समालते हुए मूलचद जब आगे आया तो सावित्री सहम कर चुप हो गयी।

दूसरे ही पल सावित्री को मूलचद ऐसा लगा जसे वह उस का पति नहीं, "कुछ और" हो

"कुछ और क्या ?"

—उसने सोचा और फिर वह पहले से भी ज्यादा ज़ोर ज़ोर मे हसने लगी। (उसे वह मिट्टी के उस बूढे जसा लगा जो उसने एक बार किसी बडे शहर मे शीशे की एक बहुत बडी अलमारी में देखा था। उसके एक छोटी-सी धोती बधी हुई थी। हाथ म लाठी लिये हुए वह कुबड़ा-सा होकर अपने पोपले मुह से मुस्करा रहा था, उसका सिर न जाने अपने आप क्या हिले जाता था, एक पल को भी नही रुकता था।)

"हीह ! आज कही पागल तो नही हो गयी ?" मूलचद ने अपने अगले छीदे दात निपोर कर नकली हसी हसते हुए कहा। पर सावित्री ने जब उसकी बिन बरौनियों की आंखों की ओर देखा तो उसे मतली-सी आने लगी।

पर सचमुच उसे आज कुछ हो ज़रूर गया था। वह मूलचद के मुह की ओर देख देखकर पागलो की तरह ही हसे जा रही थी।

"अरे सच हीह आज तुम्हें क्या हुए जा रहा है ?" मूलचद ने तीसरी बार कुछ डरी हुई आवाज़ मे पूछा।

"कुछ नही," सावित्री ने हसी रोक कर मुस्कुराते हुए बडे बेझिझक होकर मूलचद की बाह पकड ली। "तुम मेरे पास बैठ जाओ।"

मूलचद की आखें फटी की फटी रह गयी। वह सावित्री के चेहरे की ओर, उसके दोनों गालो के गढो की ओर टुकर-टुकर देखते हुए हौले से चारपाई की पटटी पर बैठ गया। पर उसे लगा—उसकी ऐनक बहुत मैली हो गयी है और उसे धुधला दिखायी दे रहा है।

"देखो, मेरे गालो मे गढे पडते हैं ?" सावित्री ने वैसे ही मुस्कुराते हुए मूलचद की ऐनक म से ही सीधे उसकी आखो मे देखते हुए, अपने दाहिने गाल को कन-उगली से छूकर, इतने सीधे शब्दों मे पूछा कि मूलचद ने शरमा कर आखें झुका ली और काफ़ी समय तक वह कुछ भी न बोल सका।

"बताओ भी ? तुम तो लड़कियो की तरह शरमाते हो।" और सावित्री ठहाका मारकर हंस पडी ।

"पड़ते हैं होह ।" मूलचद ने आखें चुराए हुए ही कहा ।

"सुन्दर लगते हैं ?"

मूलचद का दिल बहुत तेजी से धड़कने लगा था। उसने सावित्री के हाथ से जल्दी से अपनी बाह छुडा ली और उठकर बौखलाई हुई आखा से तग कोठडी के दरवाजे मे से दुकान की ओर देखने लगा और फिर लडकियो की तरह शरमाते हुए, उसने एक चोर-नजर से सावित्री को देखा और आखें झुकाकर बोला, "दुकान सूनी पडी है, कोई आ जाये तो "

"कोई नही आता, तुम जरा सी देर बैठ जाओ न" सावित्री ने फिर उसकी बाह पकडकर खींच ली ।

"ठहरो ठहरो हाँह । आज तुम्हें हुआ क्या है ? पगली न हो तो।" जरा सा मुस्कराते हुए अपनी बाह छुडाकर उसने कहा, "मैं ड्योढी का दरवाजा देख आऊ ।'

अपना आधा गजा सिर खुजाते हुए वह तेजी से गली मे खुलने वाली ड्योढी की ओर चला गया। जब वह दरवाजे का कुडा लगाकर वापस आया तो उसका चेहरा डर और गुस्से से ऐसा घिनावना बना हुआ था कि सावित्री का उसे देखने को जी न किया ।

"पगली न हो तो" उसके पास आकर मूलचद ने कहा। "आज तेरी घर सभालने की जिम्मेदारी है और तूने सारे दरवाजे चौपट खोल रखे हैं। अगर कोई आदमी अदर छिप कर बैठ जाए तो ?"

सावित्री के गालो मे गढे भर गए। उसकी कमल पखुडी जैसी बडी-बडी काली आखो के दोनो ओर थोडी-सी लाली आ गयी। जरा सी देर वह मूलचद के कीडे-खाय दाता की ओर देखती रही और फिर बहुत अजीब ढग से मुस्कुराते हुए (जिससे उसके गालो में वह गढे नही पडे) बोली "आदमी यहा से जूए लेकर जाएगा "

मूलचद को लगा जैसे सावित्री ने यह जवाब देकर बहुत बडी गुस्ताखी की है। गुस्से से वह कापने लगा। "क्या बक रही है ?" उसने रोबीले स्वर म कहा।

पर सावित्री का चेहरा उस ऊपरी मुस्कान के कारण पहचान मे नही आ रहा था।

"तूने आज भग पी है क्या ?" मूलचद और जोर से बोला।

"इस घर मे तो चूहे जूठन को तरसते हैं मुझे भग कहा मिलेगी "

"होह ! यह घर लखपतियो का है तेरे मा बाप की तरह धेले धेले का तेल बेचने वालो का नही है "

"तुम्हारे लाखो को और लाखो के पतियो को कोई हथेली पर रखकर चाटेगा क्या ?"

"तेरा दिमाग़ तो ठिकाने है आज ?"

"मेरे दिमाग़ को कुछ नही हुआ अच्छा भला है।"

सावित्री अभी भी वसे ही मुस्कुराए जा रही थी। "तुम्हारा खानदान ही सारा कजरो का है बस "

गुस्से से मूलचद से वहा खडे न रहा गया। वह सावित्री की और कोई बात सुने बिना काल कोठडी के छोटे दरवाजे में से झुककर दुकान के अन्दर चला गया और दुकान मे घुसते समय उसने आखिरी काल कोठडी का दरवाजा बन्द कर लिया।

सावित्री ने उसे इस तरह जाते देखकर एक और ठहाका मारा और फिर चुनरी से मुह सिर लपेट कर पड गयी।

शाम तक न मूलचद घर आया, न सावित्री चारपाई से उठी। उसके सिर को नीद की सी घुमर चढ रही थी। निढाल होकर वह नीम बेहोशी म पडी रही।

जब सावित्री चारपाई से उठी तो उसे ऐसा लगा जसे वह किसी पराये घर म फिर रही हो। खाना बनाने का समय था। न उसे बरतनो वाली टोकरी कहीं मिलती थी, न दाल की पतीली। चूल्हा हारा-मूढे—सब ऐसे लगते थे जैसे उसने इन्हें पहले कभी देखा ही न हो। ऐसे ही बेसुध-सी वह चलती फिरती रही और उसने न जाने कब रोटी-टुकडे का काम निबटा लिया। रोटियो वाली टोकरी

आगे रखकर वह दीवार से ढासना लगाकर चुपचाप बैठी ड्योढ़ी के दरवाज़े की ओर देखने लगी। उसे एक बार ऐसा भ्रम हुआ जैसे ड्योढ़ी का दरवाज़ा बुढ़िया नन्ती ने खटखटाया हो, पर उससे उठकर खोला न गया, उठने की हिम्मत न पड़ी।

"ला, खाना ले आ।"

यह कर्कश आवाज़ सावित्री ने सुनी और जब ऊपर देखा तो शाम की धुंधली रोशनी में मूलचंद का चेहरा उसे अपरिचित और डरावना-सा लगा। सावित्री ने चुपचाप खाना परोस कर उसके आगे रख दिया। वैसे ही चुपचाप मूलचंद ने खा लिया।

"आज भी दुकान में सोना है?" जब खाना खाकर मूलचंद हाथ धोने लगा, तब सावित्री ने अनायास पूछ लिया।

"हूं दुकान सूनी है।"

मूलचंद जैसे आया था वैसे ही दुकान को लौट गया।

सावित्री सारे बर्तन जगह-जगह पड़े छोड़कर चारपाई पर पड़ गई। कार्तिक की हल्की-हल्की सर्दी बेशुमार खिले हुए तारों से भरी हुई रात में सावित्री ऊपर को मुंह किये खुरहड़ी चारपाई पर, इस काल कोठड़ी जैसे आंगन में बिलकुल अकेली पड़ी थी। उस गहरे नीले आकाश में जड़े हुए तारे, तंग आंगन की दीवारों की मुंडेरों के साथ लगे हुए ऐसे लग रहे थे जैसे किसी ने शीशा तोड़कर बिखेर दिया हो।

इसके बाद सावित्री को नन्ती बुढ़िया की बातें याद आने लगीं—जो जवान बेटा-बेटी खाने-पहनने को तरसता हुआ मर जाये उसका ध्यान पीछे छोड़े हुए घर में ही अटका रहता है "

सावित्री को डर लगने लगा। माता के दागों से भरा, एक आंख से खाली अपनी बहन कल्लो का चेहरा उसे दिखाई दिया और ढेर सारे तारे माता के दागों जैसे दिखायी देने लगे

अगले सवेरे सावित्री को न जाने क्या हो गया, वह गुम-सुम होकर पड़ गयी। न बोलती थी न हिलती थी, न कुछ खाती थी न पीती थी। पथरायी हुई आंखों से एकटक छत की ओर देखती रहती।

फिर चार दिन और ऐसे ही पडी रही। उसकी सास और ससुर हरिद्वार से लौट आये थे। ससुर ने उसकी हालत देखकर ओझा से प्रश्न बुझाया। ओझा ने बताया, उसकी बडी बहन की पकड हो गयी थी। ओझा ने झाड फूक भी की, पर "चीज" की पकड मजबूत थी, ओझा का कुछ बस नही चला।

पाचवें दिन सावित्री की मा आ गयी। उसने झझोडें थझोड कर सावित्री को पुकारा। सावित्री ने मा के मुह को दोना हाथा से टटोला और आखें झपकने लगीं।

"मा " जब उसके मुह से आवाज निकली तो मा धाड मारकर उससे लिपट गयी।

पर सावित्री की आखें फिर वैसी की वैसी ही ठहर गयीं। देखते-देखते वह ऐसे बोलने लगी जसे काठ की गुडिया का मुह हिल रहा हो, आखें उसकी वैसे-ही बे-हरकत रही।

"मैं तेरी कल्लो हू पर तूने, मेरी मा, इस बहन को क्यो कसाइयो को दे दिया मैं पहले इस घर मे कौन सा स्वग भोग कर गयी थी इन तेरे समधियो ने न मुझे जीते जी पेट भर रोटी दी, न चारपाई पर पडी हुई को दो पैसे की दवा लाकर दी और तूने, मा, क्या देखा था आग लगानी है किसी को इनके लाखा मे।"

एक क्षण और, और सावित्री की जीभ बन्द हो गयी। आखें, सूखी की सूखी, वसे ही पत्थर के डलो की तरह टिकी हुईं, छत की ओर देखती रही।

और अगले दिन सावित्री पूरी हो गयी। जब नहला धुलाकर, रेशमी सूट पहनाकर औरता ने उसे अरथी पर रखा तो उसका ससुर भीतर से हाथ मे कटोरी लिये, आगन मे आकर उसकी अर्थी के पास खडा हो गया। कटोरी मे से पीसे हुए नीले थोथे की चुटकिया भर उसने सावित्री की कमल पंखुडी जैसी बडी बडी काली आखो मे डाल दी।

"अब अपनी बहन की तरह पीछे निगाह मत रखियो। हमारी जड भी लग लेने दो क्यो हमारे पीछे पडी हो तुम दोनो।"

और देखते-देखते सावित्री की पाच दिन की सूखी आखो के तिरछे किनारो मे से पानी रिस उठा।

•

दलवीर चेतन

रिश्तो के आर-पार

आँगन मे बैठी शोक मनाने वाला की भीड की ओर देखकर मेरे मुह से एक गहरा सास निकल गया। अपना ही आगन ऊपरा-ऊपरा-सा लगने लगा और हरासे हुए चेहरे धुधले और अपरिचित। यू तो घर की हवा कई महीना से सहमी-सहमी थी, लेकिन अब वह विलाप बनकर चारो कोना मे फैल गई थी। कोई एक हफते पहले, घर से चलत समय, चाचा के मुह की ओर देखकर मन मे एक हौल-सी उठी थी। शायद यह खून के रिश्ते की मुहब्बत का इलहाम था कि अपने छोटे भाई से न चाहते हुए भी, अनायास कह दिया था "ऐसा लगता है चाचा को फिर देखना नही मिलेगा।" —और वही बात हुई। मेरे हैदराबाद पहुचने से पहले ही वहा तार पहुच चुका था और मैं उलटे पाव लौट आया था।

बेहद लम्बा रेलगाडी का सफर—दुखो जिन्दगी की तरह और भी लम्बा लग रहा था। बरबस निकलते आ रहे आसुओ को रोकने की कोशिश मे सिर फोडे की तरह दुखने लगा था। सब कुछ आखो से देख गया था फिर भी तार के शब्दो पर विश्वास नही होता था। रेलगाडी, बस, और फिर कोई कोस भर पैदल राह चलते हुए भी चुटकी भर विश्वास साथ चलता रहा था। न जाने किसने घर जाकर कह दिया था—मेरी जवान ह। रही बहन आगे आकर मेरे गले से चिपट गयी "वीर, हम लुट गए ।" उसने कच्ची उम्र मे भी सयाना की तरह ऐसे धाड मारी कि मेरे जमे हुए पैर भी हिल गए। उसकी तरह की जोर-जोर से हूकडे मारने को जी किया, लेकिन कुछ सोचकर, मैं सारे आसू अन्दर हा अन्दर पी गया।

जिन्दगी से ऊबा हुआ, गलियो में मारा-मारा फिरने वाला बाबा विशना रोने धोने की आवाज सुनकर पास आकर खडा हो गया और अपने माथे पर हाथ रखकर मुझे पहचानते हुए बोला 'रब्ब भी, धी की यसम, इन्साफ़ नही करता। खूबसूरत बूटा उखाडकर ले गया हमारे गाव का। ऐसी ही मुसीबत पडी थी, तो

मुझे ले जाता जोन लेता, जिस जूए म जोतना था।" बाबा बिशना अपने सोटे पर पूरा भार डाले ईश्वर से गाली-गलौज कर रहा था। वह हर मौत म श्मशान तक जरूर जाता था और फिर अपने कील लगे साटे स खटिया जितनी जगह पर लकीर खीच कर कहता था "लो भई, अबके अपनी बारी है—मत भूलना।" न जाने वह कितनी बार अपनी बारी दर्ज कर थक गया था। हर अगली बारी, उसकी जगह कोई और ही अनसोचा व्यक्ति चल देता था और हर नयी मौत पर बाबा बिशना ईश्वर से गाली-गलौज पर उतर आता था। —और अब वही बाबा बिशना मेरे कधे पर हाथ रखे दिलासा द रहा था।

बिशना मरना चाहता था—चाचा जीना चाहता था, लेकिन सब जानते थे कि वह बहुत दिन जिएगा नही। वह तो चटके हुए घड़े का पानी था, या फिर रीते हो रहे तेल का दीया। "भाई मेरे मुये अपना ब्याह ही दिखा दे " कभी-कभी वह कहता और उसके हसते हुए चेहरे पर पल म उदासी छा जाती। उसकी कोई भी ऐसी बात मुझे सूली पर टाग देती, पर वह मौके का ताड़ते हुए, बहुत जल्दी हसी की अगरबत्ती जला लेता। "फिर न कहना अगर हमने कही झाक दिया। हम तो लडकी से ज्यादा समधन सुन्दर देखेंगे।" अपनी ओर से वह बडी चालाकी से बात को नया मोड दे देता और मैं भी झूठी हसी हस देता।

हमारे गाव का सबसे सुन्दर नखसिख वाला जवान चाचा कुछ ही दिना म जैसे भीतर ही भीतर सोख लिया गया था। वह आखिरी दिनो मे अपने शरीर को देखकर किलसने लगा था। पहली बार ही जब चाचा गौना कराने ससुराल गया था, अडोस-पडोस मे अपनी चर्चा छोड आया था। अनाज की बोरी बाहर दालान से उठाकर भीतर भडार म रखनी थी। सास कम्मिया को बुलाने गयी। चाचा का मालूम हुआ तो उसने अकेले ही बोरी उठाकर ठीक जगह पर रख दी। सास, बुरी नजर से डरते हुए, चाचा के काले टिमकने लगाती रही थी और चाची को अपना भरा भरा शरीर भी कोमल-कोमल लगने लगा था।

बहन की धाड़ें सुनकर और भी कई लोग आ कर खडे हो गए थे, बोले, "लबरदार वाली बात खडी हुई है।' हुई तो सचमुच अनहोनी-सी थी पर उनसे क्या कहता। झूटमूट सयाना बनते हुए कह दिया 'अच्छा जो दाता को मन्जूर आदमी कर ही क्या सकता है।' नम्बरदार तो गाव मे शायद पाच छह थे, और उनके नाम थे—नम्बरदार नत्था सिह, नम्बरदार इन्दर सिह आदि—पर चाचा के नाम

के साथ यह "नम्बरदार" ऐसे जुड गया था जैसे उसका नाम ही नम्बरदार हो। याद आया, जब मैं स्कूल म पढता था, मेरी छुट्टी की अर्जी पर चाचा ही दस्तखत किया करता था। एक बार हमारा मास्टर अर्जियो पर नामा के साथ रुतबे देखकर खीज मे भर कर बाला "यह क्या बात हुई, कप्टन करतार सिह, जैलदार सुच्चा सिह, नम्बरदार जोगिन्दर सिह—यह स्कूल है, कचहरी नही।" अगली बार अर्जी पर चाचा से दस्तखत कराते समय मैंने कहा "चाचा। अर्जी पर अकेला अपना नाम ही लिखा करे, नम्बरदार मत लिखना।" वह हसते-हसते दुहरा चौहरा हो गया "भई, मैंने तो दस्तखत ऐसे ही करने सीखे हैं, मुझे पता नही इनम नम्बरदार कौन सा है और जोगिन्दर सिह कौन सा।" और उसकी बात सुनकर मैं भी उसकी धूप-जसी हसी म शामिल हो गया था।

यही नम्बरदारी उसे ले बैठी। तहसील और कचहरी का उसे एसा चस्का लगा कि गाव मे उसका पैर ही नही टिकता था। दिन चढते ही चादर की बुक्कल मारकर घर से निकल जाना और दिन छिपे शराब मे धुत लौटना उसका नित का नेम था। उसके खेत दिन-ब दिन नि-खसमे हात गए और थाडी-बहुत उगी हुई फसल खसम बिना वीरान हाती रही। जो चाचा अ रो की रजिस्ट्रिया पर गवाही किया करता था, अब खुद ब करने लगा। देखते ही देखते उसने खेता की मल्कियत और वल्दियत बदल गयी। आमदनी घटती गयी, शराब वढती गयी और उसकी चन्दन काया घुन खाई-सी हा गयी।

अभावो से घिरे चाचा को एक भयानक बीमारी न आ दबोचा। और वह चुपचाप सब कुछ अपनी अकेली जान पर ही झेलता रहा। और जब तक सबको पता चलता, रोग असाध्य हो चुका था। डाक्टरा ने दवाए दी अ.र साथ ही बढिया गिजा खान की नसीहत भी की। जब उसके पुरते हुए शरीर को देखकर मैं उदास हो जाता ता वह हसकर कहता 'या साली बीमारी है ता अच्छा। घर म खुला खान को हा तो ऐसी बीमारी का क्या है?" और उसकी आशा के विरुद्ध जब मैं तब भी न हसता तो वह जोर-जोर से गाने लगता और उठकर बाहर की आर चल पडता था।

——आगन मे मेरे पाव धरने ही घर के सारे जीव बारी-बारी मेरे गले से लग कर रा उठे। रास्त म बेगानो के सामन भी भर-भर आते आसुआ का राककर रखने वाली आखें न जाने क्या पथरा-सी गयी और मैं गुम-सुम-सा, सारे हल्ले चुपचाप झेल गया। दरी पर बैठे लोगो ने "बहुत बुरा हुआ" की गरदान करक सहानुभूति

जतायी और चाचा की बातें करने लगे। मेरा जी भी कर रहा था कि कोई चाचा की बातें करता ही रहे। लेकिन बहुत जल्दी ही उसके बारे मे हो रही बातें दुनिया की बातो जैसी हो गयी—और अन्त म बात चाचा के बचे हुए चार खेतो पर आकर टिक गयी। और जब यह बात भी उसके खेतो से हट कर बठे हुए लोगो के अपने बढाए हुए खेतो के बारे मे होने लगी तो मैं उकताकर चाचा की उस चारपाई के पास जाकर खडा हो गया, जहा मैं उसे कुछ दिन पहले मौत से जूझते हुए छोड गया था। वहा पागलो की तरह बठी हुई दादी मेरा सिर अपनी बुक्कल मे लेकर बिलख पडी "तेरा चाचा मेरा बुढापा बिगाड गया। यह कोई उसके जाने की उमर थी?" —— लगता था जसे रो रो कर उसके सारे आसू चुक गए थे और उसकी उन सूखी आखो मे दुख ही दुख बाकी रह गया था।

दादी के वैन भी मुझसे न सुने गए तो मैं फिर बाहर आकर मर्दों की भीड मे बठ गया। अब बातें पिछले दिनो पडी वोटो की और जमीदारा को भाव कम मिलने की हो रही थी। कूई वाला करम सिह जिसे लोग उसके बहुत बोलने के कारण रेडियो भी कहते थे, भारत की राजनीति पर ऐसे बोल रहा था जसे वह ही देश का पालिसी-मेकर हो। जी किया उससे कहू कि लेक्चर बन्द करे। पर कहा नही गया। मैं उखडी उखडी नजरा स इधर उधर देखने लगा। सामने औरतो म बैठा हुआ मुझे वह चेहरा दिखायी दिया जो चाचा की पूरी जिन्दगी से जुडा हुआ था, जिसके लिए उसने कई झूटी-सच्ची तोहमतें झेल ली थी —पर पीछे नही हटा था।

चाचा का जिगरी यार मलूका भरी जवानी मे ही कुछ दिन बीमार रहकर चल बसा था, और चाचा को अपनी सारी दुनिया सूनी-सूनी लगने लगी थी। धूप के रग जसी उसकी बेवा, धूप की उम्र मे ही अधेरी अमावस बन गयी थी और चाचा सहानुभति का दिया बनकर उसके महल मे जल उठा था।

लेकिन —बेवा का अपना जोबन और कोई एक साल का लडका, उसके रगीले जेठ की आखा मे जसे कील बन कर चुभ रहे थे। लडके को वह अपने रास्ते का काटा समझने लगा था और भाई की बेवा के रूप पर उसकी बुरी नजर भाई की मौत के बाद और भी बुरी हो गयी थी। वह यारा की टोली मे बोतल के पास, बठकर बधारता वह यहा रहेगी तो मेरी रखैल बनकर, नही तो लडके समेत उसकी अरथी उठवा दूगा ।" उस बिचारी के कान मे जब ऐसे फ़नसूले पडते तो वह कापते हाथो से लडके को कस कर अपनी छाती से लगा लेती और जिस

योग्य भी थी, उस पर छाया बनकर तन जाती। लेकिन नन्हे बिरवे को छाया से ज्यादा बाड की आवश्यकता थी— और चाचा ने अपने हाथों की बाड उन दोनों के गिर्द खड़ी कर दी।

और इतने से ही लोगों ने उस पछिया की डारें बना ली और देखते देखते डार गाव के ऊपर से फड़फड़ाती हुई गुजर गयी। उन दिनों गांव के गबरुओं को जैसे और कोई काम ही नहीं रह गया था। वह उस औरत के घर के चक्कर काटते और किसी हीले-बहाने से मरने वाले से अपनी सहानुभूति जताते थे—पर जब बात बनती न दीखती तो उसके बारे में किस्से गढ़ने लगते। गढ़न्त किसी भी तरह की होती उसमें चाचा का नाम ज़रूर होता। यह बातें चाचा तक भी पहुंचती और वह उदास हो जाता और जब उससे मिलता तो उनका एक दूसरे के सामने आखें उठाने तक का हियाव न होता।

एक दिन सामने बैठी हुई उस उदास औरत ने चाचा से गहरे दुख से कहा था "तुम इस तरह घर न आया करो।" —और चाचा चुपचाप वहां से उठकर चला आया था। चाचा के जाने के बाद वह औरत घबराई थी तड़पी थी, उसने खुद को अपने से ही लड़ते हुए महसूस किया था कि वह उसके बिना कितनी रीती रीती और अधूरी थी। अगले दिन वह घर बैठी उस की बाट जोहती रही, पर वह नहीं आया। गली से गुजरने वाले कदमों की आहट लेती रही—वह उधर से नहीं गुजरा। तीसरे दिन मौका ताककर वह खुद उसके घर चली आयी। चाचा चारपाई पर बैठा था उठकर खड़ा हो गया पर बोला कुछ नहीं। थोड़ी देर की खामोशी के बाद उस औरत ने ही कहा था 'तुम गुस्से हो गए—मैंने तो तुम्हारे भले के लिए ही कहा था।" चाचा अभी भी चुप था। वह फिर बोली " मेरे साथ तो इससे बढ़कर और क्या हो जाएगा—सोचती थी कहीं तुम्हारा भी भरा-बसा घर न बिगड़ जाए।" — फिर खामोशी। और उस खामोशी के बाद अब चाचा की बारी थी "हम तो सच्चे हैं न। बकने दे लोगों को जो बकते हैं।" "यही कहने मैं आयी हूं। लोगों का बस चले तो वह जीने भी न दें", उस औरत ने कहा था। और मैं बराबर के कमरे में बैठा एक आदर से सिजदे में झुक गया था।

जब डाक्टरों की दवाएं बे-असर होने लगी तो उस औरत ने कई गुरुद्वारों में माथा रगड़ा था और सयानों-ओझों से किस्मत का लिखा पूछा था। बड़ा विश्वास था उसे ईश्वर पर कि वह दूसरी बार ऐसा अनर्थ नहीं करेगा। लेकिन इस बार

छुट्टी मे मैंने देखा था—उसका विश्वास जैसे डिग गया था। अब वह मेरे साथ चाचा की दिन दिन गिरती हुई हालत पर चिन्ता करते हुए उदासी हो जाती थी। चाचा का तिल तिल करके टटना मेरे लिए भी ऐसा ही था, पर न जाने क्या मुझे उस औरत के सामने अपना दुख छोटा लगने लगता था। एक दिन उसने बडे दुख से मुझसे कहा "इसके बारे मे सोचती हू तो कपकपी छूट जाती है—मैं कहती हू, ईश्वर, अगर तुझे इसकी जान नही बख्शनी है तो मुझे पहले उठा ले।" उस दिन बरबस निकले आसुओ पर हम दोना का कोई ज़ोर नही चला था और हम होने वाली भावी की कल्पना करते हुए जसे सूली पर टग गए थे। कितनी ही देर बाद उस औरत ने गहरा सास लिया था और मैं भी अपने आसू पोछता हुआ चुपचाप उठकर चला आया था।

और फिर चाचा के बतन अलग कर दिए गए थे। बिस्तर अलग। घर के जीव उससे बातें करने से कतराते थे। जो बच्चे जवान हो रहे थे उन्हें उसके पास बैठने या उसके साथ खाने पीने की मनाही कर दी गयी थी। दादी भी, जो पूरी आयु भोग चुकी थी, अडोस-पडोस म तो अपनी ममता का पूरा दिखावा करती थी, लेकिन घर म वह भी चाचा से एक दूरी पर ही खडी होती थी। जहा तक चाचा का बस चलता था, वह खुद पूरा परहेज़ रखता था। फिर भी वह चाहता था कोई उसके साथ हसे-खेले बातें करे। उसे बीमारी और मौत से ज्यादा घरवाला का बतीरा बेंधता रहता। गुरुद्वारे मे सवेरे शाम तवे पर बजने वाला शब्द जगत मे झूठी देखी प्रीत" उसे अब सच लगने लगा था। चाची तो सारी उम्र ही उसके हाथा जली थी। उसके "किए" से खीझी हुई हमेशा ही भला-बुरा कहती रहती थी। वह खीज उठती तो चाचा हस देता शीरे की मा! पति परमेश्वर से ऐसे गरम न हुआ कर—हम यहा कोई बैठे रहेंगे? बेटे गबरू होकर अपने आप उठा लेंगे घर का भार।' अब तो चाची काई जरूरी बात भी करते हुए नाक और मुह पर अपनी चुनरी लपेट लेती थी—और उस समय चाचा की उदासी देखी नही जाती थी।

थोडे ही दिन पहले एक शाम चाची के ऊचे बोल आगन की दीवार फाद गए थे। न जाने वह किस बात पर बिगड गयी थी। उसके नुकीले बोल मुझे भी बेंध गए थे— *"जवानी गला दी दूसरे के दरवाजे, अब मरने लगा तो हम से आ* चिपटा। अरे, जिसका तकिया सभाले बठा रहता था, वह अब भी तो गाव मे बस रही है।" —और न जाने क्या-क्या सुना था उस दिन।

उस दिन चाचा की उदासी झेली नही जाती थी। वह कितनी ही देर तक मेरे पास बैठा ससारी रिश्तो और जिन्दगी की तल्खियो की बाते करता रहा, मुहब्बत की और जन्म-मरण की बातें करता रहा। उस दिन मैंने पहली बार चाचा को इतना गभीर देखा था। जिदगी और मौत के बीच लटका हुआ वह ज्ञानियो की तरह कह रहा था "कुछ भी हो मरने को रत्ती भर जी नही करता। पर मुझे अपना अन्त दिखायी दे रहा है अब बहुत दिन जीना नही होगा।" मुझसे यह सब सहन नही हुआ था और मैं रो उठा था। पर चाचा ने मुझे दिलासा देते हुए कहा था पगला कही का कोई सारी उमर भी साथ निभता है?" पर मुझे धीरज बधाने वाला चाचा खुद भी डोला हुआ था। बरसने को हो रही आखें उसने अपने बचे-खुचे हठ से रोक तो ली थी, पर उनकी पीडा उससे रोकी नही जा सकी। अपने हर भेद को मेरे साथ बटाने वाला चाचा उस दिन भरी हुई आखो से मेरे पास से उठकर चला गया था और जाकर उस औरत के कधे पर सिर रखकर बच्चो की तरह रो पडा था, और वह औरत उसके आसू पोछते हुए और उसे दिलासा देते हुए उसकी मा बन गयी थी। फिर उस औरत ने उसके सिर को अपनी जाघ पर रख कर सलाहना शुरू कर दिया था। प्यार से वचित चाचा खुमारी की सी हालत म उसी तरह कितनी ही देर तक पडा रहा और फिर जसे उसे एक बहुत बडा अनथ होने का एहसास हुआ—वह अपना मुह एक ओर को फेर कर फिर रो उठा था। उस औरत न अपने दोनो हाथो से उसका सिर सीधा किया। एकटक वह कितनी ही देर तक उसको ओर देखती रही और फिर उसन उसके होठो पर अपने होठ रख दिए। बीमार होठो को बार-बार चूमते हुए वह कह रही थी "जी करता है तुम्हारी सारी बीमारी चूस लू।" और उस समय न जाने वह उसकी क्या लगती थी जो सब कुछ होते हुए भी दुनियावी रिश्तो मे कुछ भी नही थी

उसके बारे म सोचते हुए मेरे अस्थिर मन को बडी ढाढस मिली। शाम ढलने के कारण लोग धीरे धीरे उठकर जाने लगे थे। करम सिंह रेडियो खोलता तो रहा था, लेकिन मुझे उसकी आवाज अबर नही रही थी— "अच्छा, हौसला रखो, उसका किया तो झेलना ही पडता है।" आखरी आदमी करम सिंह भी मेरे पास से उठकर चला गया। मैंने सामने देखा सारी औरतें भी जा चुकी थी। एक गहरा सास लेकर मैंने अपने बोझिल मन को हल्का करना चाहा।

सूरज मुडेरो की ओट म जा रहा था, और आगन म लम्बे कापते हुए साए डरावने-से लग रहे थे। अस्त हो रहा सूरज मुझे चाचा जैसा लगा। पर सूरज तो

कल भी उगेगा, चाचा ही अब कभी नही लौटेगा। मैं चाचा के बारे मे सोचते हुए उठकर बाहर आ गया और उस रास्ते पर चल दिया जिस पर चाचा ने अपना अन्तिम सफर किया होगा। गरदन झुकाए चलते हुए मैं शायद चाचा के पद चिह्न खोज रहा था। पर मनुष्य अन्तिम सफर अपने पैरो से थोडे ही करता है?

श्मशान पहुचा तो बाबा बिशना को राख की ढेरी के पास खडे देखकर हैरान रह गया। वह भाटे के सहारे ऊपर को मुह उठाए, ईश्वर से होड लगाए खडा था। कुछ साल पहले उसके गबरू जवान बेटे को एक छोटी-सी बात पर ही वैरी रिश्तेदारो ने कतल कर डाला था और बाबा बिशना के लिए गाव की दीवारें काली हो गयी थी। उन दिनो वह सुबह शाम श्मशान मे बैठा रोता रहता। बेटे पर छाया करने के लिए पेड लगाता, पानी डालता और ईश्वर को गालिया दे देकर अपना जी ठडा करता। जब भी गाव की कोई असमय मौत उसके घावो को फिर हरा कर जाती तो उसकी गालिया और भी ऊची हो जाती।

एक जी किया, उससे कहू "आओ, घर चले—यहा पर जो खो जाता है फिर मिलता नही '—पर जानता था मुझसे कुछ भी कहा नही जाएगा। मुझे लगता था, मेरे बोल ही मर मिट गए हैं।

मैं भरी हुई आखो से गाव को चल दिया। पल-पल अधेरे की खडी हो रही दीवार मुझे और भी अकेला किए जा रही थी। इस अकेलेपन मे मुझे फिर उस औरत की याद आ गयी जो किसी अधेरे कोने मे बठी बडे ही छिपाव से अपना जी हल्का कर रही होगी। मैं भारी कदमो से उसके घर के आगन में पहुच गया। वहा भी अधेरा था, मेरे मन के अधेरे से भी ज्यादा गहरा। वह सफेद कपडो मे उजाले की तरह मेरी ओर आई। पास आ कर खडी हो गयी, और पहचान कर मुझे अपनी बाहो मे कस कर बावली की तरह रो उठी—मेरे भी कई दिनो के रुके हुए आसू बाढ बन कर बह निकले

सतोख सिंह धीर

कोई एक सवार

सूरज उगते ही बारू तांगे वाले ने तांगा जोडकर अड्डे मे लाते हुए हाक लगाई–"है जाने वाला कोई एक सवार खन्ने का भई ओ ।"

जाडो मे इतने सवेरे सजोग से ही कोई सवार आ जाए तो आ जाए, नही तो रोटी-टुकडा खाकर धूप चढे ही घर के बाहर निकलता है आदमी। पर बारू इस सजोग को भी क्यो गवाये? जाडे से ठिठुरते हुए भी वह सब से पहले अपना तागा अडडे मे लाने की सोचता था।

बारू ने बाजार की ओर मुह करके ऐसे हाक लगाई जैसे उसे केवल एक ही सवार चाहिए था। किंतु बाजार की ओर से एक भी सवार नही आया। फिर उसने गावो से आने वाली अलग-अलग पगडडियो की ओर आखें उठाकर आशा से देखत हुए हाक लगाई। न जाने कभी-कभी सवारिया को क्या साप सघ जाता है। बारू सडक के एक किनारे बीडी सिगरेट बेचने वाले के पास बैठकर बीडी पीने लगा।

बारू का चुस्त घोडा निठुला खडा नही हो सकता था। दो-तीन बार घोडे ने नथुने फुलाकर फराटे मारे पूछ हिलाई और फिर अपने आप ही दो तीन क़दम चला। "बस ओ बस बेटे बेचैन क्यो होता है—चलते है—आ लेने दे किसी आख के अधे और गाठ के पूरे को।" अपनी मौज मे हसते हुए बारू न दौडकर घोडे की बाग पकडी और उसे कस कर तागे के बम पर बाध दिया।

स्टेशन पर गाडी ने सीटी दी। रेल की सीटी बारू के दिल मे जैसे खुभ गयी। उसने रेल को मा की गाली दी और साथ मे रेल बनाने वाले को भी। पहले जनता गई थी, अब मालगाडी। "साली घटे घटे पर गाडिया चलने लगी।" और फिर बारू ने जोर से सवार के लिए फिर आवाज़ लगाई।

एक बीडी उसने और सुलगाई और इतना लंबा कश खींचा कि आधी बीडी फूक दी। बारू ने धुए के फराटे छोडते हुए बीडी को गाली देकर फेंक दिया। धुआ उसके मुह मे मिरच के समान लगा था।

घोडा टिककर नही खडा हो पा रहा था। उसने एक-दो बार खुर उठा उठाकर धरती पर मारे। मुह मे लाहू की लगाम चबा चबा कर थथनी घुमाई। तागे की चूले कडकी, साज हिला, परो की रग बिरगी कलगी हवा म फरफराई और घोडे के गले से लटके रेशमी रूमाल हिलने लगे। बारू को अपने घोडे की चुस्ती पर गर्व हुआ, उसने होठो से पुचकार कर कहा, 'बस, ओ बदमाश! करते हैं अभी हवा से बातें ।"

"घोडा तेरा बडा चेतन है, बारू। उछलता-कूदता रहता है।" सिगरेट वाले ने कहा।

"क्या बात है!" बारू गर्व से भर कर बोला "खाल तो देख तू—बदन पर मक्खी फिसलती है—बेटो की तरह सेवा की जाती है, नत्थू।"

"जानवर बचता भी तभी है" नत्थू ने विश्वास से कहा।

दिन अच्छा चढ आया, पर खन्ना जाने वाली एक सवारी भी अभी तक नहीं आयी थी। और भी तीन चार तागे अड्डे पर आकर खडे हो गये थे और कुन्दन भी सडक की दूसरी ओर खन्ना की दिशा मे ही तागा खडा करके सवारियो के लिए आवाजें लगा रहा था।

हाथ म झोला पकडे हुए एक शौकीन बाबू बाजार की ओर से आता हुआ दिखायी दिया। बारू उसकी चाल पहचानने लगा। बाबू अड्डे के और निकट आ गया। पर अभी तक उसके पैरो ने किसी एक तरफ का रुख नही किया था।

"चलो, एक सवारी सरहिंद की कोई मलोह जाने वाला भाई।" आवाजें ऊची होने लगी। पर सवार की मर्जी का पता नही लगा। बारू ने खन्ने की आवाज लगाई। सवार ने सिर नही उठाया। "कहा जल्दी मुह से बोलते हैं ये जटरमन आदमी' बारू ने अपने मन मे निंदा की। तभी बाबू बारू के तागे के पास आकर खडा हो गया। "और है भई कोई सवारी?" उसने धीरे से कहा।

बारू ने, अदब से उसका झोला थामना चाहते हुए कहा "आप बैठो बाबूजी आगे—अभी हाके देते हैं, बस—एक सवार ले लें।"

पर बाबू ने झोला नही थमाया और हवा मे देखते हुए चुपचाप खडा रहा। ऐसे ही घटे भर तागे मे बठे रहने का क्या मतलब ?

बारू ने जोर से एक सवार के लिए हाक लगाई, जैसे उसे बस एक ही सवार चाहिए था। बाबू जरा टहलकर तागे के अगले पायदान के थोडा पास को हो गया। बारू ने हौसले से एक हाक और लगाई ।

बाबू ने अपना झोला तागे की अगली गद्दी पर रख दिया और खुद पतलून की जेबो मे हाथ डालकर टहलने लगा। बारू ने घोडे की पीठ पर प्यार मे थपकी दी और फिर तागे की पिछली गद्दिया को यू ही जरा ठीक-ठाक करने लगा। इतने म एक साइकिल आकर तागे के पास रुक गयी। थोडी सी बात साइकिल वाले ने साइकिल पर बैठे-बैठे उस बाबू से की और वह गद्दी पर से अपना थैला उठाने लगा। बारू ने डूबते हुए दिल से कहा "हवा सामने की है, बाबू जी।" पर साइकिल बाबू को लेकर चलती हुई।

घुटने घुटने दिन चढ आया।

ढीठ-सा होकर बारू फिर सडक के एक किनार सिगरेट वाले के पास बैठ गया। उसका जी कैंची की सिगरेट पीने का किया। पर दो पैसे वाली सिगरट अभी वह किस हिम्मत से पिये? फेरा आज मुश्किल से एक ही लगता दीखता था। चार आने सवारी है खन्ने की—छह सवारियो से ज्यादा का हुकम नही है—तीन रुपये तो घोडे के ही पट मे पड जाते हैं। उसके मन मे धुकड-पुकड होने लगी। ऐसे यहा वह क्या बैठा रहे? वह उठकर तागे मे पिछली गद्दी पर बठ गया ताकि पहली नजर मे सवार को तागा बिलकुल खाली न दिखायी दे।

तागे मे बैठा वह "लारा लप्पा, लारा लप्पा " गुनगुनाने लगा और फिर हीर का टप्पा। पर जल्दी ही उसके मन मे बेचनी स होने लगी। टप्पे उसके होंठो को भल गए। वह दूर फसलो की ओर देखने लगा। खेतो म बल खाती पगडडिया पर कुछ राही चले आ रहे थे। बारू ने पास आते हुए राहिया की ओर ध्यान से देखा। चारखाने सफेद और चादरो की बुक्कल मारे चार जाट-से थे। बारू ने सोचा, पशो पर जाने वाले चौधरी ऐसे ही होते हैं। उसने तागे को मोड कर उन की ओर जाते हुए आवाज दी "खन्ने जाना है, नम्बरदार? आओ, बैठो, हाकें फिर ।"

सवारिया कुछ हिचकिचायी, और फिर उनमे से एक ने कहा "जाना तो है अगर इसी दम चलो। "

"अभी लो वस बैठने की देर है ।" बारू ने घोडे के मुह के पास लगाम थाम कर तागे का मुह अड्डे की ओर घुमा दिया।

"तहसील पहुचना है हमे, पेशी पर, समराले।"

"मैंने कहा बैठो तो सही—दम के दम मे चले।"

सवारिया तागे मे बैठ गइ। "एक सवार" की हाक लगाते हुए बारू ने तागे को अड्डे की ओर चला लिया।

"अभी और एक सवारी चाहिए?" उनमे से एक सवारी ने तागे वाले से ऐसे कहा जैसे कह रहा हो "आखिर तागे वाला ही निकला।"

"चलो, कर लेने दो इसे भी अपना घर पूरा " उन्ही मे से एक ने उत्तर दिया "हम थोडी सी देर से पहुच जायेंगे ।"

अड्डे से बारू ने तागा बाजार की ओर दौडा लिया। बाजार के एक ओर बारू ने तागे के बम पर सीधे खडे होकर हाक लगाई "जाता है कई अकेला सवार खन्ने भाइयो ।"

"अकेले सवार को लूटना है राह मे?" बाजार से किसी ने ऊची आवाज मे बारू से मजाक किया।

बाजार मे ठठा हो उठा। बारू के सफेद दात और लाल मसूडे दिखने लगे। उसके गाल फूल कर चमक उठे और हसी मे हसी मिलाकर सवार के लिए हाक लगाते हुए उसने घोडा मोड लिया। अड्डे आकर सडक के एक किनारे खन्ना की दिशा म तागा लगाया और खुद सिगरेट वाले के पास आकर बैठ गया।

"की न वही बात ।" तागे वाले को ऐसे आराम से बैठे देखकर एक सवार बोला।

"ओ भई तागेवाले। हमे अब ऐसे हैरान करोगे?" एक और ने कहा।

"मैंने कहा, हमे रुकना नही है नम्बरदार। बस एक सवार की बात है—आ गया, अच्छा नही, चल पडेंगे।" बारू ने दिल-जमई की।

सवारियो को परेशान देखकर कुन्दन ने अपने तागे को एक कदम और आगे करते हुए हाक दी "चलो, चार ही सवारी लेकर जा रहा है खन्ने को " और वह चिढाने के लिए बारू की ओर टुकर-टुकर देखने लगा।

"हट जा ओए, हट जा ओ नाई के, बाज आ तू लच्छनो से।" बारू ने कुन्दन की ओर आखें निकाली और सवारियो को वगलाए जाने से बचाने के लिए आती हुई औरतो और लडकियो की एक रग बिरगी टोली की ओर देखते हुए कहा "चलते हैं, सरदारो। हम अभी बस, वह आ गई सवारिया।"

सवारिया, टोली की ओर देखकर फिर टिक कर बैठी रही।

टोली की ओर देखते हुए बारू सोचने लगा शायद ब्याह गौने के लिए सजधज कर निकली है या ये सवारिया—दो तागे भर लो चाहे—नावा भी अच्छा बना जाती हैं ऐसी सवारिया ।

टोली पास आ गई।

कुछ औरतो और लडकिया ने हाथो मे कपडो से ढकी हुई टोकरिया, और थालिया उठायी हुई थी। पीछे कुछ घुघट वाली बहुए और छोटी छोटी लडकिया थी। बारू ने आगे बढकर, बेटो जैसा बेटा बनते हुए एक औरत से कहा "आओ, माई जी, तैयार है तागा, बस तुम्हारा ही रस्ता देख रहा था—बैठो, खन्ने का "

"अरे नही भाई " माई ने सरसरी तौर पर कहा "हम तो माथा टेकने जा रही हैं, *माता के थान पर* "

"अच्छा माई अच्छा" बारू हसकर कच्चा सा पड गया।

"ओ भई चलेगा या नही?" सवारियो से कही सब्र होता है। बारू भी उन्हें हर घडी कैसी कैसी तरकीबो से टाले जाता। हार कर उसने साफ बात की 'चलते हैं बाबा— आ लेने दो एक सवार-कुछ भाडा तो बन जाये"

"तू अपना भाडा बना, हमारी तारीख निकल जाएगी?" सवारिया भी सच्ची थी।

कुन्दन ने फिर छेड करते हुए सुनाकर कहा 'सीधे हात हैं कोई-कोई लोग—कहा फस गये-पहली बात तो यह अभी चला ही नही रहा है-चला भी तो कही रास्ते मे औंधा पड जायेगा—कदम कदम पर अटकता है घोडा।

सवारिया कानो की कच्च होती हैं। बारू को गुस्सा आ रहा था। पर वह छेड को अभी भी झेलता हुआ कुन्दन की ओर कडवाहट से देखकर बोला "नाई, ओ नाई—तेरी मौत बोल रही है, गाडी तो सवेरा ला पहले मा से जा के, ढीचकू ढीचकू करती है यहा खडा क्या भौंके जा रहा है कमजात।"

लोग हसने लगे। पर जो दशा बारू की थी, वही कुन्दन और दूसरे तागे वालों की थी। सवारिया किसे नही चाहिए? किसे घोडे और कुनबे का पेट नही भरना है? न बारू खुद चले न किसी और को चलने दे-सबर भी कोई चीज है—अपना-अपना भाग्य है-नरम-गरम तो होता ही रहता है-चारो को लेकर ही चला जाये-किसी और को भी रोजी कमाने दे-कम्बख्त पेड की तरह रास्ता रोके खडा है। कुन्दन ने अपनी जड पर आप ही कुल्हाडी मारते हुए खीझ कर हाक लगाई "चलो, चार लेकर जा रहा है खन्ने का कम्बख्त—चलो, जा रहा है मिनटा सकिडा मे खन्ने-चलो, भाडा भी तीन तीन आने।" और तागा उसने एक कदम और आगे कर लिया।

बारू की सवारिया पहले ही अकी हुई थी—और सवारिया किसी की बधी हुई भी नही होती—बारू की सवारिया खिसककर तागे से उतरने लगी।

बारू ने गुस्से मे ललकार कर कुन्दन को मा की गाली दी और अपनी धोती की लाग मार कर कहा "उतर बेटा नीचे तागे से।"

कुन्दन बारू को गुस्से मे तना हुआ देखकर, कुछ ठिठक तो गया पर तागे से नीचे उतर आया और बोला 'मुह सभाल कर गाली निकालियो, अबे कलाल के।"

बारू ने एक गाली और दे दी, और हाथ मे थामी हुई चाबुक पर उगली जोड कर कहा 'पहिये के गज्जा मे से निकाल दूगा साले को तिहरा करके।"

'तू हाथ तो लगा के देख।" कुन्दन भीतर से डरता था, पर ऊपर से भडकता था।

ओ, मैंने कहा मिट जा तू मिट जा, नाई के। लहू की एक बूद नही गिरने दूगा धरती पर—सारा पी जाऊगा।" बारू को खीझ थी कि कुन्दन उसे क्या नही हूँबराबर की गाली देता।

सवारिया इधर उधर खडी दोनों के मुह की ओर देख रही थीं।

"तुझे मैंने क्या कहा है? तू नथुने फुला रहा है फालतू मे।" कुन्दन ने ज़रा डटकर कहा ।

"सवारियें पटा रहा है तू मेरी।"

'मैं सवेरे से देख रहा हू, तेरे मुह को,—चुटिया उखाड दूगा।"

'बडा उखाडने वाला है तू " कुन्दन बराबर दूबदू करने लगा।

'मेरी सवारिया बिठायेगा तू?"

"हा-बिठाऊगा ।'

"बिठा फिर " बारू ने मुक्का हवा मे उठा लिया।

"आ बाबा " कुन्दन ने एक सवार को कधे से पकडा।

बारू ने तुरन्त कुन्दन को कुरते के गले से पकड लिया। कुन्दन ने भी बारू की गदन के गिद हाथ लपट लिये। दोनो उलझ गये। पकडो छुडाओ होन लगी। अत मे और तागेवालो और सवारिया ने दोना को छुडा दिया और अड्डे के ठेकेदार ने दानो को डाट डपट दिया। सबने यही कहा कि सवारिया बारू के तागे मे ही वैठें। तीन आने की तो यू ही फालतू बात है—न कोई लेगा न कोई देगा। कुन्दन को सबने थोडी फटकार—लानत बता दी—और सवारिया फिर बारू के तागे मे बैठ गयी।

बारू को अका हुआ और दुखी देखकर सबको अब उससे हमदर्दी-सी हो गयी थी। सब रिल मिल कर उसका तागा भरवा कर रवाना करवा देना चाहते थे। सवारियो ने भी कह दिया कि चलो, वह और घडी भर पिछड लेगे, यह अपना घर पूरा कर ले—इसे भी ता पशु का पेट भर कर रोटी खानी है गरीब को।

इतने मे बाजार की ओर से आते हुए पुलिस के हवलदार ने आकर पूछा 'तागा तैयार है कोई खन्ने का, ऐ लडको?

पल भर के लिए बारू ने सोचा, आ गयी मुफ्त की बेगार न पैसा न धेला—पर तुरत ही उसने सोचा—नही ता पुलिस से कर नही सकते, अगर यह टागे मे बैठा होगा तो दो सवारिया चाहे फालतू भी बिठा लूगा—नही देना भाडा तो ना सही—और बारू ने कहा "आओ, हवलदार जी, तैयार खडा है तागा, बैठो आगे।'

हवलदार तागे मे बैठ गया। बारू ने एक सवारी के लिए एक दो बार जोर से हाक लगाई ।

एक लाला बाज़ार की ओर से आया और बिना पूछे बारू के तागे मे आ चढा। दो एक बुढ स्त्रिया अडडे की ओर सडक पर चली आ रही थी। बारू ने जल्दी से आवाज देकर पूछा "माई, खन्ने जाना है?" बूढिया तेजी से कदम फेंकने लगी और एक ने हाथ हिलाकर कहा 'खडा रह भाई।"

'जल्दी करो, माई, जल्दी।" बारू तडफडी कर रहा था।

बूढिया जल्दी-जल्दी आकर तागे मे बैठने लगी "अरे भाई क्या लेगा?"

"बैठ जाओ माई झट से—आपसे फालतू नही मागता।"

आठ सवारिया से तागा भर गया। दो रुपये बन गये थे। चलते चलते कोई और भेज देगा, मालिक! दो फेरे लग जायें ऐसे ही । बारू ने ठेकेदार को महसूल दे दिया।

"ले भई, अब मत साइत पूछ " पहली सवारियो मे से एक ने कहा।

"लो जी, बस, लेते हैं रब्ब का नाम " बारू घोडे की पीठ पर थपकी दे कर बम से रास खोलने लगा।

फिर उसे ध्यान आया, एक सिगरट भी ले ले। एक पल के लिए खयाल ही खयाल मे उसने अपने आप को टप-टप चलते तागे के बम पर तन कर बठे हुए, धुए के फर्राटे उडाते हुए देखा और वह भरे तागे को छोड कैंची की सिगरट खरीदने के लिए सिगरट वाले के पास चला गया।

भूखी डायन के समान तुरत, अम्बाले से लुधियाने जाने वाली बस, तागे के सिर पर आकर खडी हो गयी। पल भर मे ही तागे की सवारिया उतर कर बस के बडे पेट मे खप गयी। अडडे मे झाडू फेरकर डायन के समान चिंघाडती हुई बस आगे चल दी। धुए की जलाद और उडी हुई धूल बारू के मुह पर पड रही थी।

बारू ने अडडे के बीचा बीच, चाबुक को ऊचा करके, दिल और जिस्म के पूरे जोर से एक बार फिर हाक लगायी 'है जाने वाला कोई एक सवार खन्ने का भाई ओ ।"

अजीत कौर

कमरा नंबर आठ

रात भर वह पीती रही। सुख रंग की कोई शराब थी। पास ही उसने एक बडी-सी थमस मे बर्फ भर रखी थी। बर्फ के टुकडे गिलास मे डालती जाती पीती जाती।

सिगरेट के बाद सिगरेट। गिलास के बाद गिलास।

कुछ मिनट बीतत और वह उठकर कमरे मे टहलने लगती। गुसलखाने की बत्ती का स्विच शायद हर बार भूल जाती। सारे स्विच ऑन करके देखती। कभी कमरे की कोई बत्ती जल उठती कभी काई। कभी कोई पखा चल पडता, कभी कोई। स्विच ऑन किए जाती, आफ किए जाती। गुसलखाने की बत्ती का स्विच सबसे बाद मे मिलता।

गुसलखाने की बत्ती जलती। दरवाजा बन्द होता। शावर की आवाज आती। शायद हर बार उठ कर नहाती थी वह

फिर मेरी जरा-सी आख लग गयी। तडका होने को आया। बाहर कौआ बोला। कौए की आवाज से ही शायद मेरी आख खुल गयी। देखा—वह कुर्सी पर निढाल बैठी है। सिर पीछे कुर्सी की पीठ पर टिकाकर। आखें बन्द करके। मैंने गौर से उसके मुह की ओर देखा।

एक पूरी रात हमने एक ही कमरे मे बितायी थी। सारी रात एक पीडा उसने और मैंने एक साथ ही एक ही छत के नीचे झेली थी। यह पीडा उसकी अपनी थी, और मेरी परायी थी—अन्तर केवल इतना था। परन्तु पीडा शायद एक सक्रामक रोग है कम-से-कम मेरे लिए तो है। मैं तुरन्त उस सक्रमण को लपक लेती हू—*शायद इसलिए। सारी रात हम दोनो ने अनिद्रा भी एक साथ झेली थी—उसकी* अपनी, और मेरी परायी अनिद्रा। सारी रात वह भी जागती रही थी और मैं भी उसके सग जागती रही थी। बिना उसको जाने। बिना उसके चेहरे की पहचान

के। केवल इतना कि एक प्राणी था उस कमरे मे, जो अत्यन्त व्याकुल था—इतनी तीव्र व्याकुलता के पार्श्व में पड़ोस म रह कर कोई ऐसे निसग रह सकता है ?

पर इस सब कुछ के बाद भी मैं और वह दानो अजनबी थे। उसकी नग्न पीडा को मैं आख भरकर देख नही सकती थी। आखें चुरा रही थी।

सारी रात–जिस समय बत्ती जल रही होती, उसके चेहरे की ओर देखन का साहस नही पडता था। जब बत्ती बुझी होती थी तब केवल उसके चेहरे का एहसास होता था—और हाथो का, जब सिगरेट का एक सुलगता हुआ प्वाएट अधेरे मे नीचे से ऊपर जाता था, ऊपर से नीचे आता था।

उसका चेहरा थकान से टूटा हुआ था। झुर्री एक नही थी, पर चेहरे का मास थोडा-थोडा ढीला लग रहा था – चेहरा चालीस से इधर का ही था, पर गदन और हाथ कम से कम पतालिस के। नीले रग के नाइट गाउन म लिपटी हुई वह कुर्सी पर ऐसे पडी थी, मानो जिन्दगी की सारी बाजिया हारकर और सारा घर-बार लुटाकर बैठी हो।

कौआ की आवाज से शायद उस की नीद भी टूट गयी। पर जिस समय उसने वैसे ही निश्चल बैठे-बठे आखें खोल दी, मुझे सदेह हुआ कि वह पहले भी सोयी हुई नही थी, केवल उसकी आखें बन्द थी—शायद बेतहाशा थकान के कारण या सारी रात निरन्तर शराब पीने के कारण। मैंने झट नजरे चुरा ली। पहलू बदलकर दीवार की ओर मुह कर लिया

बम्बई आ कर मैं सदा वाई०डब्ल्यू०सी०ए० मे ठहरती हू। एक धारणा बनी हुई है मन मे कि लडकिया का होस्टल है सेफ होगा। है भी सेफ। पर कमरे पुराने, पलग लोहे के, उन पर रुई के सख्त गूमडा वाले गद्दे। जितने दिन रहती हू, नीद की गोली खाकर सोना पडता है। अब के आयी तो पुराने वाई०डब्ल्यू०सी०ए० से लगी हुई एक नयी-नकोर इमारत बनी हुई थी–वाई०डब्ल्यू०सी०ए० इटरनेशनल गेस्ट हाउस। सोचा, इसी म रहा जाए। रिसेप्शन से मालूम हुआ कि अलग कमरा कोई खाली नही है ड्डा डारमेंटरी है—चार चारपाइयो वाला खुला हाल कमरा जिसमे इस समय केवल एक और गेस्ट है। मैंने कहा, चलो कोई बात नही दो चारपाइयो की दूरी बीच मे डालकर मैं सो जाऊगी। क्या हज है। नये ढग से रहकर भी देखना चाहिए। सो, इस कमरे म आ गयी।

शाम से लेकर अगले सवेरे तक यह औरत एक ही कमरे मे मेरे साथ रह रही थी किसी अनोखी अकथ पीडा से लड रही थी। और मुझे लग रहा था, इसकी पीडा बटाने मे मैं असमथ हू।

फिर भी दीवार की ओर मुह किये हुए भी जैसे मैं उसे देख सकती थी, यद्यपि वह मेरी पीठ के पीछे बैठी हुई थी। आवाज़ से अनुमान हुआ कि वह उठी थी। उठकर उसने बाहर का दरवाज़ा खोला था। घटी बजायी थी। वह दरवाज़े म ही खडी रही। नाइट ड्यूटी वाला बेटर आखें मलता हुआ आया। (यह सब मैं आवाज़ा से अनुमान लगा रही थी। उस ओर देखने का साहस नही था मुझ मे।)

उसन कहा—"हम एक बाटल पानी मागता।"

'वैरी वल, मेम साहब" बैरे ने मशीन की भाति उत्तर दिया। वह अन्दर आकर फिर बाल्कनी के दरवाज़े मे जा खडी हुई। माचिस की तीली घिसने की आवाज़ आयी—उसने शायद सिगरेट सुलगाया था।

पानी आ गया। फिर उसने बफ मगवायी। पानी से गिलास भरकर और उसम बफ के टुकडे डालकर वह पीती रही—जसे रात को शराब पीती रही थी।

आधे घटे बाद पानी की एक और बोतल। फिर और, फिर और। जितने समय म मैं उठी, चाय पी, तैयार हुई ब्रेकफास्ट खाया, वह पानी के गिलास पीती रही। गिलास के बाद गिलास। मानो भीतर जल रही किसी भट्टी को बुझा रही हा। पर भट्टी थी कि बुझने म ही नही आ रही थी।

"मेम साब बैड-टी?" — वह बिस्तर पर नही, कुर्सी पर बैठी थी लेकिन सवेरे के प्याले का नाम बैड-टी ही था, सा बैरा ट्रे लेकर उस के पास खडा पूछ रहा था। शायद पूछने का यह मतलब था कि ट्रे कहा रखू?

'नही मागता।"

ट्रे वापस चली गयी।

कोई एक घटे बाद ब्रेकफास्ट आया।

"नही मागता।"

"न्यूज़ पेपर?"

"नही मागता ।"

मैं नहा रही थी । बाहर के दरवाज़े पर दस्तक हुई । हल्की टिक टिक । फिर ज़ोर से ठक-ठक । उसने दरवाज़ा खोला । पता नही कौन था । गुसलखाने म मुझे उसके चिल्ला कर बोलने की आवाज़ आयी "आइ डाट वाट एनीथिंग । आई डाट वाट टु बी डिस्टब्ड । व्हाई डू यू डिस्टब मी अगेन ऐंड अगेन? नही कुछ नही चाहिये मुझे । नो टी, ना ब्रेकफास्ट । डाट वाट टु बी डिस्टब्ड ।"

मैं बाहर निकली । वह फिर कुर्सी पर निढाल बैठी थी । सिर पीछे डाले हुए मैंने देखा—उसके बाल छोटे छोटे कटे हुए हैं, बेजान से, कुर्सी की पीठ से टिके हुए । उसकी उगलियो मे सिगरेट सुलग रहा है । हाथ कुर्सी की बाह पर पडा है । बिलकुल गरीब-सा, बिचारा-सा लग रहा था । उस समय एक पल के लिए मन मे विचार आया कि उसके कधो के गिर्द बाह लपटकर उसका सिर अपने कधे पर टिका लू और पूछू "तुम्हें क्या तकलीफ है? मुझे बताओ । किसी से बात नही करेगी । तो पागल हो जायेगी । यह दुनिया तो अच्छे भले आदमी की बात नही पूछती । पागल हो जाओगी तो कोई पास नही आयेगा । " पर नही, कुछ नही कहा मैंने । उसकी पीडा की नग्नता को देखने का शायद मुझम साहस नही था । और फिर मैं बम्बई काम से आयी हुई थी । साढे नौ बज रहे थ । दफ्तरा के खुलन का समय हो रहा था । मुझे बाहर जाना था

शाम को लौटकर आयी तो पूरा कमरा सिगरेट के धुए से भरा हुआ था । वह शायद अन्दर गुसलखाने म नहा रही थी । कमरे की बन्द हवा मे सास घुट रहा था । मैंने दोनो खिडकिया खोल दीं । पर्दे हटा दिये । बाहर बाल्कनी पर खुलने वाला दरवाज़ा खोल दिया । बाल्कनी मे निकलकर खडी हो गयी ।

यह कमरा दूसरी मजिल पर था । नीचे से पापलर का एक पेड दीवार के साथ-साथ ही सीधा ऊपर की ओर आ रहा था । उसकी चोटी पर उगी हुई ऊपर की कोमल नरम कोपला को मैं हाथ बढाकर छू सकती थी । मैंन हाथ बढाकर उन्हें इस तरह दुलराया जैसे सोये हुए बच्चे के गाला को सहलाते हैं । एक मुस्कान मेरे होठों पर आ कर टिक गयी ।

तभी महसूस हुआ मेरे ठीक पीछे कोई है । चौंककर दखा वह थी । मेरे पीछे की ओर दरवाज़े के पास पडी हुई मेज़ पर से सिगरेट की डिबिया उठा रही थी ।

मुझे लगा, मेरी मुस्कान अशिष्ट थी, एक बेअवसर की बात। मैं जैसे उसकी चोरी कर रही थी, और उसने मेरी चोरी पकड़ ली थी।

मुझे शर्म आयी। मैं बाल्कनी से हट गयी। मुझे लगा, उस कमरे में मैं न अपने बिस्तर पर लेट सकती थी, न कुर्सी पर बैठ सकती थी। न पढ़ सकती थी, न आराम कर सकती थी। मैं जैसे कोई चोर थी, उसकी नज़रों से बचती हुई।

इतनी पीड़ा के सामने शायद हर मनुष्य चोर हो जाता है, क्योंकि वह इस पीड़ा में हिस्सा नहीं बटा सकता। प्रत्येक मनुष्य को अपना सलीब अपने ही कंधों पर उठाकर उस स्थान पर ले जाना पड़ता है जहां उसे गाड़ कर उसे उस पर ही सूली चढ़ाया जायेगा।

मैं चुपचाप नहाकर, कपड़े बदलकर बाहर चली गयी। पास के एक सिनेमा हाल में जा बैठी। कोई ठाय ठूय वाली फिल्म थी। ऐसी मार धाड़ की फिल्म मुझे कभी अच्छी नहीं लगती। पर समय बिताना था। सारे दिन की थकी हुई थी। और वहां कमरे में बेहद घुटन थी।

फिल्म देखकर बाहर निकली। एक छोटे-से रेस्तरां में दो सैंडविच खाकर काफी का प्याला पिया। (अजीब बात है कि अकेले कहीं बैठकर बाकायदा किस्म का खाना खाना मुझे वल्गर लगता है। अकेले बैठकर कोई कैसे खाना खा सकता है? हां सैंडविच की बात और है। सैंडविच तो सिर्फ सैंडविच हैं)

वापस लौटी तो तीसरी चारपाई के लिए भी एक औरत आ चुकी थी। यह नयी आने वाली महिला कोई फारेनर थी। बड़ी थकी हुई लगती थी। पर बातें करने की शौकीन। मुझसे पूछा 'तुम कहां से आयी हो?'

मैंने कहा 'दिल्ली से।"

"किस काम से?"

कहा 'जर्नलिस्ट हूं। चक्कर लगाने पड़ते हैं। कभी एक शहर, कभी दूसरे शहर।'

वह बोली 'मैं सिलोन से आयी हूं। वहां अभी मैं पन्द्रह दिन और रहना चाहती थी, पर अचानक रिवोल्ट हो गया। सड़कों पर गोलियां चल रही थीं। हल्ले-गुल्ले से हमेशा मुझे डर लगता है। मैं भाग आयी।" वह हंसी।

"रिवोल्ट की वजह नहीं मालूम हुई? इधर तो अखबार वालों ने कुछ पल्ले ही नहीं पड़ने दिया।"

'नहीं मेरी समझ में कुछ नहीं आया। कोई कुछ कह रहा था, कोई कुछ। लेकिन मैंने ज्यादा ध्यान भी नहीं दिया। शोर शराबे में मुझे कोई दिलचस्पी नहीं है। सियासत के शोर में भी नहीं। शोर शराबा तो मेरे अपने मुल्क में बहुत है—स्टेटस में। दुनिया के इस हिस्से में मैं शांति की खोज में आयी थी।"

अचानक उसकी आवाज़ बहुत उदास हो गयी। जितने समय वह मुझसे बातें करती रही थी, वह अपने बक्स में से कपड़े निकाल निकालकर हैंगरों पर टांगती भी रही थी। पर यह बात कहकर, एक हाथ में कोई कपड़ा और दूसरे में हैंगर थामे वह जैसे थक कर चारपाई पर बैठ गयी। मुझे सूझ नहीं रहा था कि अब मुझे क्या कहना चाहिए। गुसलखाने के दरवाज़े की ओर देखा, शायद वह औरत बाहर *आ जाए और माहौल बदल जाए। पर नहीं,—छुटकारे की जब आवश्यकता होती है नहीं मिलता।*

"स्टेट्स में, यानी अपने घर तुम काम करती हो?"

"हां, मैं टीचर हूं।"

"*तुम्हारा परिवार वहीं होगा। वह लोग तुम्हें याद करते होंगे।" (बहुत* मूर्खता की बात थी। पर बातें भी कहीं देर की हुई होती हैं कि ठीक समय पर ठीक बात ही बजायी जा सके?)

'*कोई नहीं है।"* उसकी आवाज़ जैसे कुएं में से आ रही थी। उसकी नज़रें परे बाल्कनी के पार कहीं दूर देख रही थी। "इकलौता बेटा था। बहुत बरस अकेले *उसे पाला था। एयर फोर्स में था। वियतनाम में मारा गया।'*

'ओह! आइ एम सारी।" (प्रायः यह शब्द असत्य होते हैं पर इस समय झूठ नहीं बोल रही थी।)

"लगता था, पागल हो जाऊंगी। फिर सोचा, निकल कर कहीं भाग जाऊं। यहीं सूझा कि दुनिया के इस हिस्से में शायद ढेर सारी शांति होगी। शायद यहां की हवा और मिट्टी में भी शांति होगी। योग मेहर बाबा सत्य साईं बाबा—इनके बारे में पढ़ रखा था। मैं इधर भाग आयी।"

तभी गुसलखान का दरवाज़ा खुला। वह बाहर निकली। बिस्तर की चादर का उस ने पीठ के पीछे और बगलो के नीचे से आगे लाकर बायें सिरे को दायें कधे पर और दायें सिरे को बायें कधे पर डाला हुआ था। सफ़ेद चादर म लिपटी हुई वह खूबसूरत लग रही थी ।

शायद तीसरे व्यक्ति के आने से वह विदेशी महिला बातें बन्द कर के अपन कपडे फिर स हैंगरा म टागन म व्यस्त हो गयी। मैं नहाने के लिए गुसलखान मे चली गयी। गुसलखाने म अभी भी किसी टल्कम की बहुत प्यारी महक बसी हुई थी। नहाकर बाहर निकली तो वह विदेशी महिला अपनी चारपाई की बत्ती बुयाकर लेट चुकी थी। वह मेरी पुरानी साथिन अपनी चारपाई के पास कुर्सी पर बैठी अपने नाखुना पर से पुरानी पालिश उतार रही थी। पालिश की शीशी उसके पास रखी हुई थी। मुझे सतोष हुआ कि वह शायद नामल हो रही थी।

अपनी चारपाई की बत्ती जलाती तो रोशनी सीधी उस विदेशी महिला के मुह पर पडती इसलिए नही जलायी। कुछ पढे बिना सोना भी असभव था और अभी कवल ग्यारह बजे थे। यद्यपि पिछली रात बिल्कुल नही सोयी थी, पर अब नहा धोकर कुछ पढने को जी कर रहा था। सो दो तीन किताबें बाक्स म से निकाली, और लाउज म चली गयी। कोई एक घटे के बाद लौटी तो नीद सिर म गहरे धुए की तरह भरी हुई थी। हौले से कमर का दरवाज़ा खोला। वह कुर्सी पर बैठी थी। एक हाथ म सुलगती हुई सिगरेट दूसरे म शराब का गिलास। सुख रग की शराब मे बफ का तैरता हुआ टुकडा।

मैं चुपचाप जाकर अपनी चारपाई पर लट गयी। वही बेचनी। वही बार बार उठना। बुझती जलती बत्तिया। गुसलखाना। शावर। शराब और शराब। खुलता बद होता हुआ थमस। बफ क टुकडा की खनकार।

किसी ने समय के पावा म बेडिया डालकर उस किसी अधेरे तहखाने म बन्द कर दिया था। वहा वह पत्थर की बहरी दीवारा से टक्कर मार रहा था, और काटे जा रहे सूअर की तरह चीख रहा था। मुझे एहसास हो रहा था कि उस अमरीकन औरत को भी नीद नही आ रही है। अपनी चारपाई पर पडी बे-आरामी से वह करवटें बदल रही थी ? बहुत बेचैनी से कभी चादर ओढ लेती थी कभी उतार देती थी। फिर उसन तकिया सिर के नीचे से निकाल कर मुह पर रख लिया, उसे ऊपर से दोनो बाहो से दबा लिया। शायद सारी आवाजा से अपने आपको

अलग करने की कोशिश कर रही थी। पर कमरे में यह जो एक वहशत भरी पीड़ा घुमड़ रही थी, एक खामोश बेचैनी, आप्रेसिव रैस्टलैसनेस जो दीवारों के अंदर भर गयी थी—एक उमस की तरह, एक घुटन की तरह उस तनाव को अपने आपके बाहर कोई कैसे थाम सकता था।

आखिर वह जैसे झुंझलाकर चारपाई पर उठ कर बैठ गयी—'फार हैवन्स सेक, स्टाप इट। आई वांट टू स्लीप।"

"कौन मना कर रहा है सो जाओ न।" वह औरत न अपनी जगह से हिली, न उसने मुड़ कर देखा। उसी तरह बैठे-बैठे बड़ी रोबदार आवाज़ में बोली।

"कौन सो सकता है इस तरह? जब तक तुम नहीं सोती, कोई नहीं सो सकता इस कमरे में।"

"मेरे सोने न सोने में इंटरफीअरेंस भी कोई नहीं कर सकता। मेरी मर्ज़ी होगी, सोऊंगी। नहीं मर्ज़ी होगी, नहीं सोऊंगी।"

अमरीकन औरत की आवाज़ गुस्से से कांपने लगी "क्या तुम सोचती हो कि एक तुम ही दुखी हो? क्या तुम सोचती हो, तुम्हारी तकलीफ ने तुम्हें लाइसेन्स दे दिया है कि तुम सिर्फ अपने लिए जियो?" (ऐसे जैसे कोई कहे, तुमने समझ क्या रखा है अपने आपको? नवाबज़ादी हो तुम कोई? कहां की हूर की परी हो तुम?)

"गो ऐंड कंसल्ट ए डाक्टर एबाउट योर नर्व्ज़।' उस औरत ने कहा, निश्चल बैठे बैठे ही।

"ओह!" अमरीकन औरत ने गुस्से से तिलमिला कर कहा और उठ कर अपना तकिया और चादर उठा कर लाऊंज में चली गयी—शायद लाऊंज के सोफे पर सोने के लिए।

* * *

अगले दिन शाम के समय दरवाज़े पर टिक टिक हुई। मैंने दरवाज़ा खोला। वाई० डब्ल्यू० सी० ए० का मैसेंजर-ब्वाय था। उसके साथ एक पादरी।

मैसेंजर-ब्वाय ने मेरी साथिन से कहा "फादर इज़ हीअर।" वह आखें मूदे कुर्सी पर बैठी थी। उठकर खडी हो गयी। वैसे ही सफेद चादर मे लिपटी हुई वह पादरी के साथ लाउज मे चली गयी।

मैं वैसे बडी शाइस्ता किस्म की औरत हू। किसी की बात चोरी से सुनना मेरे बस की बात नही है। पर उस औरत के बारे मे न जाने क्या बात थी, मैं भी उठकर लाउज के बराबर वाले रीडिंग रूम की ओर चल पडी। क्यूरिआसिटी? नही मालूम। पर मैं उसके बारे मे जानना चाहती थी। साथ ही शायद यह भी सोचा होगा कि इसकी पीडा सारी-सारी रात मैं बाटती रही हू—खामोश। इसे नग्न पीडा की गली से छटपटाते हुए गुजरते देखती रही हू—खुली आखा से—फिर किस बात का पर्दा?

वह पादरी से कह रही थी ?"फादर! आइ डाट हैव ऐनी कनफैशन टु मेक। काई नही था बात करने वाला। नाट ए सिंगल सोल ट टाक टू। यह सारी पीडा अकेले सहन नही हो रही थी। यह अकेलापन। यह लोनलीनैस। होपलैस हैल्पलैस फस्ट्रेशन आफ स्टाक लोनलीनैस। मैंने सोचा, अगर किसी से बात नही करूगी ता पागल हो जाऊगी। आइ'ल गो नट्स।"

उसके स्वर मे कुछ इस प्रकार की निराशा थी, कुछ ऐसी लाचारी थी, कुछ इस तरह की निढाल थी वह आवाज, कि मैं वहा से चली आयी। आते हुए उसकी बातो के कुछ टुकडे भी मेरे साथ आ गये। वह कह रही थी "जहा मैं रहती हू वहा की खाली, शून्य दीवारा से सिर पटक-पटक कर कई आवाजें रोती थी। मेरे अकेले दिनो और अकेली राता की बे-आवाज़ आवाजें। यह भाग आयी। पर लगता है, सिर्फ दीवारें ही वहा छोड आयी हू, बाकी सारी बातें और रोने की आवाजें और अनवहे आसुओ का सैलाब—सब साथ ले आई हू। दीवारो मे ही नही, वह तो मेरी छाती मे भी रो रही हैं। सारी की सारी आवाजें। मैं कहा जाऊ? "

* * *

अगले दिन चौथी चारपाई वाली लडकी भी आ गयी। सवेरे से शाम तक समाचारपत्रो के "वाटिड' कालम पढती रही। नौकरी ढूढ रही थी शायद। अचानक मुझे ख्याल आया, किसी समाचारपत्र के किसी वाटिड कालम मे कोई ऐसा विज्ञापन

(विज्ञापन? कैसा बाजारू शब्द है। नही, एक सदेश! हा, कोई ऐसा सदेश नही छप सकता?— एक औरत। आयु चालीस से पर। खूबसूरत, ढलरवली खूबसूरत। बहुत बहुत अकेला। बहुत बहुत तेज तीव्र पीडा म से गुजर रही। उसे जरूरत है किसी महबूब मर्द की। जहा भी कोई बहुत बहुत अकेला मर्द, जिसने जिन्दगी के कड़वेपन को पिया हो, इस सदेश को पढ़े, वह वाई०डब्ल्यू०सी०ए० इटरनेशनल गैस्ट हाउस के कमरा नबर आठ मे आ जाए। पर जल्दी। बहुत जल्दी। अकेलेपन की घुटन म कुछ मालूम नही होता कि कौन सा सास आएगा, कौन सा नही आएगा।"

जसबीर भुल्लर

तीन दीवारो वाला घर

डूबते सूरज की अतिम किरनो ने गिद्धो को पख फडफडाते देखा। पिछले दिनो ही दुश्मन का गोला घास मे गिरा था। सूखे तिनको को चरने वाला रेवड वही ढेर हो गया था। जो रेवड ढेर हुआ था वह न जाने पूरब वालो का था या पश्चिम वालो का – भगदड मे किसी के पास यह छानबीन करने का समय ही नही था। यह गिद्धो का उत्सव था। गिद्ध तो चारा खूट से इक्टठे हो गए थे।

घास के पास से गुजरते हुए लडके की आखो मे पीडा चमक उठी। उसने पीडा को ज़ब्त करते हुए घास का गटठर सिर से फेंक दिया और पाव म चुभा काटा निकालने बैठ गया।

मर रही धूप मुर्दा डगरा के अधखाये शरीरो पर पड रही थी। पश्चिम का माथा लाल लहू के रग मे डूब गया था।

जग के दस्तावेज़ पर तसदीक की मोहर तो कब की लग चुकी थी। अधिकाश लोग गाव खाली कर गये थे। जो रह गये थे वह चिंतित थे। लडके को कोई अन्तर नही पडा था। वह बेफिक्र होकर आज भी ज़खीरे के कीकरा के घोसला मे अडे ढूढ रहा था।

और मौत गाव की आर सरक रही थी। काटा निकाल चुकने पर उसन घास का गटठर उठा कर सिर पर रखा और चल पडा। आज उसे कुछ देर हो गयी थी। मा तो गुस्से होगी ही। आज तो भूखी बकरी भी मिमिया रही होगी।

सर्दी उसके नगे पैरो से चिपट गयी थी। उसन अपने कदम तेज़ कर लिए।

गाव की ओर से उसने एक ज़ोर का धमाका सुना और फिर ऊमर तले धमाका की आवाज़ करते हुए आग के कई गोले देखे। मिट्टी के गुबार तेज़ी से आकाश की ओर उठे। उसके सिर पर से घास का गटठर गिर गया।

सूरज ने अचानक ही पेडा की ओट मे मुह छिपा लिया। मटमैला अधेरा उसकी आखो मे भी उतर आया। वह घबराया हुआ पेडो के झुरमुट की ओर चल दिया।

गिद्धा म चीख-पुकार मची हुई थी। शायद मास के किसी टुकडे को लेकर बात बढ गयी थी।

सारगर्भित निस्तब्धता के बाद गाव मे एक शोर मच गया। वह वही खडा हो गया। वह किधर जा रहा था ? गाव मे उसकी वद्धा मा थी, बकरी थी और आले मे रक्खी हुई कौडिया थी जिनसे वह "जिस्तडाग" खेला करता था। वह परेशान-सा गाव की ओर लौट चला। अधेरा अभी गहरा नही हुआ था। पथिको को पथ दिखाने के लिए आज कोई दीया नहीं जला था।

पुरानी कब्र वाले बड की दाढी लटककर उसके पैरो मे बिछी हुई थी। दाढी के बीच से हो कर जाती हुई पगडडी पर वह धीरे धीरे चलता गया। उसे बूढे बड के पत्तो मे छिपे प्रेतो का खयाल तक भी नही आया।

तकिये के पास पहुच कर उसने देखा — जो लोग पीछे रह गए थे वह भी गाव छोड कर चल दिए थे।

चौपाल वाले पीपल के नीचे का अधेरा धीरे धीरे सैलाब बनकर फैल गया। उसकी पहचानने की शक्ति अधेरे के सैलाब मे डूब गयी। अब वह भीड मे किसी को भी पहचान नही सकता था। उसके सामने शोर का समुद्र था या हडबडाई हुई काली परछाइयों का हुजूम।

मा भी उठकर कही भीड के साथ ही न चली गयी हो। उस चिन्ता मे मा को उसने कई आवाज़ें दीं। मेले में उगली से छूटे

बच्चे जैसी उसकी हाक, कुछ देर तक घबराई हुई भटकती रही और फिर काफले की भीड मे गुम हो गयी ।

काफले का शोर बहुत दूर चला गया ।

गाव उसके सामने अपरिचित बन कर खडा था। सूनी गलिया, आधे गिरे हुए खाली मकान भाय भाय करते खभे, गाव मे जैसे कोई दानव घूम गया हो ।

ठोकरें खाता हुआ वह गली तक पहुचा तो आगे का रास्ता बन्द था । सिरे वाला मकान गिर जाने से मलबे ने गली रोक ली थी । वह लाचार-सा हो कर खडा हो गया ।

मा भूखी प्यासी बैठी होगी । बहुत अजीब है मा भी । हर वक्त गाली-गलौज करती रहती है पर उसके वापस लौटने तक खाना नही खाती । किसी न किसी तरह घर पहुचना ही पडेगा ।

मलबे के पहाड की ओर अभी वह कोई दो कदम ही चला था कि किसी मुर्दे से ठोकर खा कर आगे को गिर पडा । उसकी सोचने की शक्ति को तो पहले धमाके से ही मूर्च्छा आ गयी थी । उसने फटी हुई आखो से लाश के कुचले हुए चेहरे की ओर देखा आर अगारे से हाथ खींचने जैसी तेज़ी के साथ लाश के ऊपर से कूद गया ।

मलबे के ढेर के आगे की तरफ उतरने लगा तो कोई तेज़ चीज उस के दायें पैर मे चुभ गयी । वह कराह कर वही बैठ गया । शायद कोई टूटा हुआ काच का टुकडा चुभ गया हो। उसके पैर के नीचे की मिटटी गीली थी। उसने टोह कर देखा—उसके पैर से कुछ टकराया ज़रूर था, पर मिटटी किसी और के खून से भीगी हुई थी । पास ही मलबे के नीचे दबी हुई लाश की टागें मलबे के बाहर निकली हुई थी। उसने लाश के पैरो से घोडी की जूती उतारकर अपने पैरो मे पहन ली —वह उसके पैरो के लिए बहुत बडी थी, पर अब उसे अपने पैरो की सलामती की निश्चिन्तता हो गयी थी ।

भारी बूटो की चाप इधर को ही आती हुई सुनकर वह एक कौले की ओट म हो गया । कथाओ वाले दैत्यो जैसी काली परछाइया 'मानस गध" "मानस गध" करती गाव की गलिया छान रही थी । कुछ पर कौले के पास आ कर रुक गए और कुछ आगे निकल गए। लडके ने अपनी कमीज मुह मे ले कर अपनी चीख को कठिनाई से रोका। डर के मारे उसकी आखें फैल गई । पुतलिया अधेरे मे चमक उठी। ठड के कारण कम्पन और तज हो गया ।

'गाव तो खाली मालूम हाता है" कोई फुसफुसाहट-सी मे बोला।

'काम का माल हमे फिर भी मिल जाएगा" किसी और ने उत्तर दिया "हम इस गली मे चलते हैं ।"

परो की आवाज कुछ दूर चली गयी तो लडके ने एक लम्बा सास लिया । सिर उठा कर उसने खतरा टलने की टोह ली और फिर तेज कदमा से अपनी गली की ओर चल दिया ।

कई माड मुड चुकने पर अब कोई दस कदम के बाद उसके घर का उढका हुआ दरवाजा था । उस भिडे हुए दरवाजे के बीच से रास्ता बना कर प्रकाश की एक रेखा अधेरी गली के दो टुकडे कर रही थी। उसका घर आज गाव का शायद एकमात्र दिये वाला घर था । अपने घर का दरवाजा देखते ही उसकी भख जाग उठी। मा कटोरदान मे रोटिया रखे हुए उसकी प्रतीक्षा कर रही होगी । आज तो खूब गालिया मिलेंगी मा से । आखा के आगे लटक रहा भय, पेड के सूखे हुए पत्तो के समान झड गया । लगा — पेट मे चूहे दौड रहे थे । जूती वही उतार कर वह नगे पर घर की ओर भाग गया ।

दरवाजा चोपट खोल कर भीतर घुसते ही उसके पर ठिठक गये।

उसन घबरा कर पहले अपनी आर तनी हुई दोनो राइफला को देखा और फिर दैत्य जस उन आदमिया की ओर ।

"साल ने जान ही निकाल ली थी' एक ने निश्चिन्तता का सास भरते हुए राइफल वापस कधे पर लटका ली । दूसरे ने खीझ कर राइफल

का कुदा लडके की पसली म मारा । लडक ने एक चीख मार कर अपनी पसली को थाम लिया और वही ढेर हा गया ।

दीय के पीले प्रकाश मे उसकी डूबती हुई नज़रा ने तीन दीवारो पर खडी अपने घर की छत देखी । पिछली दीवार गाले की मार से ढह चुकी थी । धरती पर उसकी मा की लाश पडी थी । खून के जोहड म मा का चेहरा वहुत बेआराम-सा लग रहा था । दीय के प्रकाश न मा का चेहरा और ज़द कर दिया था ।

'बालियां तो सोने की ही लगती है ?" एक न झुक कर लाश के काना की वालियो को टटाला और अपने साथी के हुकारे की प्रतिक्षा किये बिना ही अपनी आर झटका दिया ।

लडके ने मास के करच करच करके चीरे जान की आवाज दो बार सुनी । आखा के सामन फैले तिरमिरा के बीच उसने मा के बुच्चे कानो की ओर देखा और फिर घुप्प अधकार मे उतर गया ।

टिमटिमाता हुआ दिया लडके की सज्ञा लौटने तक भी जल रहा था ।

उसने लेटे लेटे आखें चारो ओर घुमाई । गिरी हुई दीवार की आर से दीये को हवा लग रही थी । डबती चलती परछाइयो के बीच मा का चेहरा वडा भयानक लग रहा था । उसकी लाश वही पडी थी । खून का जोहड काला पड चुका था । रोटियो वाला कटोरदान आधा मलबे के नीचे था आधा बाहर । बकरी का कही कोई नाम-निशान नही था । लडके की पसली मे अभी भी दद हो रहा था । उस ने पसली को कस कर पकड लिया और उठकर बैठ गया । तीन दीवारा वाले घर म उसे खतरा महसूस हो रहा था । भयानक आखें जैसे दीवारो मे भी उग आयी थी । दीये की कापती हुई लौ की ओर दखने पर भय, काना के अधेरे की भाति उसकी आखो मे इकटठा हो हो गया । अपने पीछे दरवाजा खुला छोडकर वह फिर बाहर चला गया।

बाहर कोहरा फैल चुका था । धुध के साथ साथ हवा मे नमी भी लटक गयी थी । दूधिया अधेरे मे मौत के साये हस रहे थे। सर्दी ने उसके फटे हुए स्वैटर मे से रास्ता बना लिया । उसने पसली को कस

कर थाम लिया और मौत के सायो की ग्राड म चलता गया । उसके दात बजने लगे । पसली छोडकर उसने ग्रपने हाथ ग्रपनी बगलो मे दे लिए और ग्रपने खेल के साथी दौले के घर की ओर चल दिया । गाव खाली होने के समय भी दौले-हूर का परिवार टिका रह गया था। शायद ग्रब भी कोई प्राणी बाकी हो । उस बहुत सहारा मिल जाएगा ।

बरामदे म दीया जल रहा था । बद दरवाजे की दरारो मे से रोशनी बाहर ग्रा रही थी । वह ठिठक कर खडा हो गया । ग्राज उसे रोशनी से बहुत भय लगने लगा था । ग्रचानक दरवाजे की दरारो के रास्त मे बाहर निकल रहे वहशी बोल ग्रागन म बिखर गये "बडी ग्रायी भाइया वाली यहा तेरा काई भाई-वाई नहीं है यह सारे तेरे खसम खडे हैं उतार दे पल्ला शल्ला "

लडके ने बरामदे की खिडकी से ग्रपनी ग्राख सटा ली । तीन फौजी दौले की बहन के गिर्द खडे थे । वह सुबकियो से रोती हुई मिन्नतें कर रही थी । एक ने उस की लोई खीच ली जो वह ओढे हुए थी। दूसरे ने आगे बढकर उसके कमीज के गले मे हाथ डाल दिया और कमीज को फाडता हुग्रा नीचे तक ले गया । ग्रागे हाथ रख कर वह वह उसी जगह सुकड कर बैठ गयी ।

यह क्या ह रहा था ? लडके की समझ मे कुछ नही ग्रा रहा था। ग्राज तो जा भी देखा था उसकी छोटी समझ के बाहर था । वह दरार से ग्राख सटाए ग्रजीब-सी हालत मे बैठा रहा ।

पीछे से किसी ने उसका गला ग्रा दबाया । दहशत के कारण उसे यह खयाल ही नही ग्राया था कि वह इस जन मे शामिल नही था । उन तीन फौजियो मे स एक ग्रन्दर रह गया था और दो बाहर ग्रा गए थे ।

फौजी ने उसे कमीज के गले से पकड कर एक बार ऊपर उठाया और फिर जमीन पर पटककर ग्रपनी राइफल सीधी तान दी ।

"नही नहीं मुझे मत मारो ।" ठड से सुन्न शरीर जैसे गम लोहे के तवे पर गिर गया । बाया हाथ धरती पर रख कर वह पीछे

को ओर खिसका और दाया हाथ ऊपर उठा कर उसने मिन्नत की "मुझे मत मारो ।'

"इसे भी उसी बाडे मे बन्द कर आ बाद मे इन सबसे एक साथ ही निबटेंगे " दूसरे फौजी ने आदेशात्मक स्वर मे पहले से कहा।

बाडे मे मेगनियो की तेज दुगन्ध थी ।

वहा और भी बहुत-से बच्चे बन्द थे । वह सब एक गुच्छा-सा बने हुए एक दूसरे से सट-सट कर बठे हुए थे । उन्होंने एक साथ गर्दनें ऊपर उठा कर उसकी ओर देखा और फिर गर्दनें झुका ली ।

अधेरे म वह सबके चेहरे नही देख सकता था, लेकिन पास बैठे हुए लडको को पहचानता था । वह सब उसके गाव के ही थे ।

जो फौजी लडके को छोडने आया था उसने एक दो मिनट सन्तरियो से बात की और फिर वापस लौट गया ।

एक सन्तरी ने बाडे के छप्पर की कुछ छिपट्टिया खीच ली और उन्हें अपने भारी बूटो से तोडते हुए खीझ कर बोला "आप साले रगरलियो मे मस्त हैं और हम इन पिल्ला की रखवाली कर रहे हैं "

दूसरे सन्तरी ने उक्डू बैठ कर छिपटियो को आग लगा दी और फिर माचिस जेब म डाल कर वैसे ही बैठा रहा । दूर बैठे हुए बच्चा ने गर्माई के एहसास के लिए आग की ओर मुह कर लिया । सिसकते हुए बच्चे एक पल के लिए चुप हो गए ।

"हम इनमें से ही कोई ढग का लडका निकाल कर ' पहले ने बात को अधूरा रहने दिया ।

आग की ओर बढाये हुए हाथा को आपस म मलते हुए दूसरा बोला "ढग का भी कौन-सा किसी ने रहने दिया है । वह तो छाट कर पहले ही ,"

"फिर ?"

"सवेरे इनकी जिम्मेदारी भी अपने ही सिर पर पडेगी । अपनी जान को तो पहले ही सौ झझट हैं "

अपने नेने-देने को फिर क्या रह गया ? भून देते हैं '

"नही। गोलिया खराब नही करनी चाहिए। पीछे से, जान वक्त पर कारतूस पहुचें न पहुचें।'

तुम एकाध गोली का कड़वा घूट कर ही लेने दो, नही तो यह फिर वापस लौट आएगे।' अपने साथी के उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना उसने बच्चो को सबोधन किया "मैं बाडे का मुह खोले देता हू यह रास्ता तुम्हारे गावो का जाता है। सीधे तीर की तरह चले जाओ पीछे मुड कर मत देखना। अगर मेरे दस गिनते गिनते तक कोई यहा दिखायी देता रह गया तो यह राइफल उसे छोडेगी नही '

वह भेडो की तरह एक दूसरे को धक्के देते हुए बाहर की ओर दौडे।

एक! दो! तीन! गिनती उस के मुह मे ही डूब गयी, गोली की आवाज ने अधेरे की छाती चीर दी। चौपाल वाले पीपल पर बैठे हुए पछियो ने पर फडफडाये। कब्र वाले बूढे बड के चमगादड बेचैन हो गए। लडके के साथ भागने वाले घुन्ने की चीख उठते ही शान्त हो गयी। वह धरती पर गिरते ही ठडा हो गया। दूर से आने वाली गोलियो की आवाजें एक पल के लिए खामोश हो गयीं, ऐसा लगा। बच्चे एक क्षण के लिए ठिठक कर खडे हो गए और फिर अपनी पूरी ताकत से भाग खडे हुए। वहशी अट्टहास सुखरू हो कर आग सेंकने बैठ गया।

सुन परो को उसने अपने हाथो से मला और फिर हाथ बग़लो म दे लिए। मुर्दे के पैरो से उतारी हुई जूती उसे बहुत याद आयी।

सरकडो मे से गुज़रती हुई हवा का शोर, जगी हथियारो के शोर म, किसी जगली कबीले के बलि के समय बजने वाले साजो के शोर के समान था। उसने घबरा कर दायें बायें देखा। उसके साथी न जाने किधर छितरा गए थे। वह फिर अकेला रह गया था। वह खडा हो गया। वह किधर जा रहा था आखिर? कोई किधर जा सकता है भला? इस समय तो हर कोई घर पर होता है। हर शाम पछी भी तो पेडो को लौट आते हैं। एक दिन वह घोसलो मे अडे तलाश करते

हुए अपनी घौडी जूती खो आया था और मा गुस्से से चीखी थी "नित नया जोडा मैं तुझे कहा से ला कर दू ? दफा हो जा यहा से । जूती ढूढ कर ही घर लौटना।' तपती दुपहरी मे वह भटकता फिरता रहा था और शाम को नगे पर गाव लौटते समय वह जानता था वह और कही नही जा सकता था, उसे घर ही लौटना था । हर कोई घर ही लौटता है ।

वह फिर गाव की ओर मुड गया ।

उसे खून के पोखर मे डूबी हुई ममता का चेहरा स्मरण हो आया । शायद मा जीवित ही हो । उसे आते समय मा के ऊपर कोई गम कपडा डाल आना चाहिए था। अब उसे घर से भाग आने पर पछतावा हो रहा था। अपने घर से भी कोई भागता है भला ?

गाव मे पहले जैसा ही सन्नाटा था ।

गलिया सूनी थी, पर रात जाग रही थी। जो दरवाज़ा वह आते समय अपने पीछे खुला छोड आया था, इस समय भिडा हुआ था । दरवाज़े के आगे छोटा-मोटा कितना ही सामान बिखरा पडा था जैसे छीन-झपट यहा ही होती रही हो। सामान को अनदेखा करके उसने दरवाज़े से अपने कान लगा दिए। ज़रा सी भी आहट नही थी। उसने हौले से दरवाज़ा खोला। मा का सिर लहू के सूखे तालाब मे वैसे ही पडा हुआ था। वह दबे पाव भीतर चला गया।

दरवाज़े की करड-करड सुन कर उसने गर्दन मोडी तो सास वही बर्फ हो गया। दरवाज़े के पास, ईटो के सहारे से अधलेटे फौजी ने लेटे लेटे ही पैर से दरवाज़ा उढक दिया ।

लडके ने अपने बचाव के लिए एक बार उढके हुए दरवाज़े की ओर देखा और फिर फौजी की ओर।

फौजी ने लडके को रोकने के लिए हाथ ऊपर किया और फिर कराह कर नीचे गिरा लिया ।

फौजी के सख्त चेहरे पर पीडा का लेप था। उसने दोनो हाथो से अपना पेट कस कर पकडा हुआ था। उसकी वर्दी खून से लगभग लिथडी हुई थी। उसके हाथ अपने ही खून से सने हुए थे। जब हाथ अपने ही लहू से गीले हो जाए

तव कही कोई खतरा बाकी नही रहता। लडका घुटनो के बल बैठ गया और झिझकते-झिझकते उसकी ओर झुक गया।

" उन्होने सब इकट्ठा किया-कराया हुआ छीन कर भी लिहाज नही किया" अपने लहू से सने हाथो की ओर देख कर उसने आह भरी,

"कौन? कौन थे वह ? "

" अपने ही साथी" उसने कहा, "पानी! मुझे पानी दे पहले ?"

पिछली दीवार के गिरने से घडा टूट चुका था। टूटे ठीकरे मे अभी भी दो एक चुल्लू पानी बाकी था। उसने ठीकरा उठा कर फौजी के मुह से लगा दिया। पानी पीकर वह कुछ सभला "बु' बेटे। पिट्ठू म से कम्बल निकाल कर मेरे ऊपर डाल दे।"

लडके न उसके ऊपर कम्बल तानते हुए देखा — फौजी की आखे बन्द हो रही थी।

'और तुम कौन हो ?" उसने झिझकते हुए पूछा।

"मैं ?" फौजी ने आखें खोली और उत्तर की खोज मे प्रश्न दुहराया। उसकी "मैं" एक पल के लिए "अधेरे' म डूब गयी। "अधेरे" से बाहर आने पर उसके चेहरे की पीडा मे मुस्कराहट व्यग बन कर शामिल हो गयी, मैं ? मैं दुश्मन।"

दुश्मन ?' यह भला क्या नाम हुआ ? लडके को याद आया—मा उसके किसी फौजी चाचा का जिक्र किया करती थी। वह शायद यही हो। उसने तसदीक करने के लिए कहा, 'दुश्मन ? दुश्मन चाचा ?"

'हा।" वह धीरे से मुस्कराया। उसके दिमाग ने एक क्षण के लिए गोता खाया, पर दूसरे ही क्षण उसने अपना लहू से सना हाथ लडके के सिर पर फेरा।

लडके में जैसे नयी जान आ गयी। वह कितना अकेला रह गया था। उसे कोई सहारा देने वाला ही नही रहा था। वह दुश्मन चाचा की ओर थोडा और खिसक गया।

"मैं बीमार हू मैं सोऊगा तू भी सो जा अब ।"

'चाचा ! मुझे डर लग रहा है ।"

'डर ! मुझसे ?"

"नही, चाचा ! आज मुझे मुये आज "

फौजी ने उसे पुचकारा, " अब डर की कोई बात नही है। अब मैं जो तेरे पास हू तू मेरे पास ही सो जा ।"

फौजी ने तकिये की जगह अपनी बाह लडके के सिर के नीचे लगा दी । लडका सुबकता हुआ, भूखा प्यासा वही सो गया ।

फौजी ने टूटी हुई छत मे से सोये हुए तारो की ओर देखा । टिमटिमाते हुए दीये के उजाले मे उसकी आखो म आसू चमक आए । उसकी निगाह जैसे अपने ही धुर अन्तर मे उतर गयी। वह मीलो दूर अपने घर पहुच गया — जहा तोतले बोलो ने हवाओ को सुर दिया था । उसने लडके को कसकर अपने से चिपटा लिया । आसू उसकी आखो से बहे और कच्ची मिट्टी ने पी लिए ।

दीये का तेल चुक गया था । तेल बिना जलने के जतन में उस की लौ एक दो बार ऊपर उठी और फिर सो गयी । सब कुछ अधेरे मे डूब गया ।

भोर ने अधेरे का थोडा-सा पीला किया तो लडके ने ऊ ऊ कर के करवट बदली । सारा कम्बल फ़ौजी के ऊपर से उतर कर उसके गिर्द लिपट गया ।

लडके की धुध ने उसकी मा की अकडी हुई लाश भी देखी और मुर्दे की बाह का तकिया बना कर सोये हुए बेफ़िक्र लडके को भी ।

गाव के किसी कोने मे बच रहे मुर्गे ने बाग दी । गली मे कोई आवारा कुत्ता जी भर कर रोया । अनजान लडका बेफ़िक्री की नींद सोता रहा ।

गुलजार सिह सधू

सबंध

वह दफ्तर जाने के लिए दाढी बना रहा था कि सामने वाले मकान मे रोना-पीटना होने लगा। शायद किसी की मृत्यु हो गई थी। बस्ती से आने वाली भिन्न भिन्न प्रकार की अन्य सभी आवाजें बद हो हो गया। केवल एक ही स्वर ऊचा उठना और फिर मद्धिम हो जाना इस्तिरी करने वाले की रेढी, डबल रोटी बेचने वाले की साइकिल और मिट्टी का तेल बेचने वाले की ट्राइसाइकिल उस घर के आगे रुकते रुकते आगे बढ गयी। अडे डबल रोटी वाले ने तो आधी आवाज लगाने के बाद बाकी आवाज कठिनाई से रोकी थी। उस घर मे भी प्रति दिन अडा और डबल रोटी की माग होती थी, पर आज के दिन तो वहा खडे होने मे भी हानि थी। "अडो की टोकरी उतार कर वहा तक खबर ही दे आओ साइकिल पर!" कोई कह सकता था। और मृत्यु के मामले मे किसी को मना भी नहीं किया जा सकता था।

उसने आराम से अपने मुह पर क्रीम लगाई और उसके बाद उस्तरा चलाता रहा। बरामदे मे पालथी मार कर बैठे हुए भी, ऊपर की मजिल होने के कारण, गली मे जो घटना हो रही थी वह साफ दिखायी दे रही थी और सामने नीचे की मजिल के ठीक सामने वाले मकान से आने वाली रोने की आवाज भी वैसे ही सुनायी दे रही थी। आवाज स्त्री की थी। उसने सोचा कि शायद किसी बच्चे को कुछ हो गया है। वह प्रतिदिन इस घर से दो-तीन बच्चो को स्कूल की बस पर सवार होते देखता था। उसे याद नही आ रहा था कि आज सब जा चुके थे या कोई पीछे रह गया था। याद भी कैसे आ सकता था। उसे कौन सा मालूम था कि उस घर मे कितने बच्चे थे। बच्चे वालो को ही दूसरे बच्चो की खबर होती है। उसके अपने घर मे कोई बच्चा नही था,

इसलिए न कोई बच्चा उसके घर खेलने आता था, न ही उसके घर से कोई किसी के घर खेलने जाता था। कैसे पता लग सकता था कि किसी के कितने बच्चे थे।

अचानक उसे खयाल आया कि अगर किसी बच्चे को कुछ हुआ होता तो अब तक उसका पिता बाहर बरामदे में आ कर किसी और व्यक्ति को सहायता करने के लिए आवाज़ देता, यह नहीं हुआ था। हो सकता है पिता घर मे ही न हो। उसने कौन-सी पिता की शक्ल देखी थी कभी। था भी या नहीं। सवेर तड़के दो तीन अधेड़ आयु के लोग इस जगह से स्कूटर स्टार्ट करते थे, आवाज़ वाले क्वाटर का मालिक पता नहीं उनमें से कौन था। शायद उनमे से कोई इस घर के बच्चों का पिता भी था। जाने इस घर मे बच्चे थे भी या नहीं।

रोने की आवाज़ और भी ऊंची हो गयी। इस बार औरत का रोने का स्वर इतने ज़ोर से निकला कि उसे बरामदे में बैठे हुए झुरझुरी आ गयी। शेव करने के बाद मुंह देखने के लिए शीशा हाथ में लिया था, वह हाथ मे ही रह गया। इस औरत का आदमी मर गया है—न जाने किस आयु की होगी। और न जाने इसका पति कितनी आयु का था। पर दुख बहुत अधिक था। कौन बता सकता था। औरत मर जाती तो आदमी दूसरा विवाह कर सकता था। आदमी मर गया तो औरत किसके आसरे जिएगी। बच्चों को लेकर रिश्तदारों के घर घूमती फिरेगी। उसके मन मे अनेक प्रकार के विचार उठने लगे।

किन्तु उसे पति पत्नी के दुख या पति पत्नी की साझेदारी का क्या ज्ञान था? जिस जीवन का अनुभव ही न हो, उसके संबंध में क्या सोचा जा सकता था। उसने तो पति पत्नी के रूप मे या तो अपने माता पिता को देखा था या एक दो रिश्तदारों को। सदा लड़ते ही रहते थे, एक दूसरे को काट खाने को दौड़ते लगते थे। यदि किसी के आने पर हंस हंस कर बात करते भी थे तो दिखाने के लिए। यह वह भली प्रकार जानता था। शायद इसीलिए उसने विवाह नहीं किया था। अब पचास से ऊपर हो गया था, अब विवाह की क्या आयु रह गयी थी?

उसने अपना चेहरा अच्छी तरह शीशे मे देखा। झुरियां तो कम थी, लेकिन मास बहुत ढीला हो गया था । निरा स्मड़। यह मुह और मसूर की दाल । 'अरे ठोलू।" उसने बाहर से आए हुए नौकर को पुकारा । "पानी गरम रख नहाने के लिए और मेरा सूट प्रेस करा ला, सलेटी।" उसने ऐसे कहा जैसे प्रेस किया हुआ सूट पहनने से उसके चेहरे का मास कस जाएगा । अरे, इधर रो कौन रहा है ? कौन मर गया ?"

"वह साहब ! सामने वाले साहब को कुछ हो गया है । पता नहीं मौत ही हो गयी है । मेम साहब रो रही हैं । रोये ही जा रही हैं।

"बच्चे ?"

"बच्चे भी घर मे ही हैं । स्कूल जाने लगे हो थे कि साहब को दिल का दौरा पड गया ।"

"अच्छा, पानी गरम करो जल्दी।" उसने नौकर को काम पर लगा दिया और स्वय दिल के दौरे के सबध मे सोचने लगा । उसे भी दौरा पड सकता था । नौकर ने बताया था, गुसलखाने से निकलते ही गिर पडा था बिचारा । यह दिल भी बडी नाजुक चीज़ है । उसने अपने सबध मे सोचना आरम्भ कर दिया । बचपन मे एक बार झूला झूल रहा था कि उसका दिल घबराने लगा था । प्रेमिका का विवाह किसी और से हो गया था, तब भी कुछ ऐसी ही घबराहट हुई थी । उन्हीं दिनो उसने दिल्ली से ताजमहल देखने के लिए जाते हुए मथुरा रोड पर किसी के बराबर अपना स्कूटर दौडाया था, तो उस समय भी उसने अपने पीछे पीछे आनेवाले स्कूटर को आगे जाने दिया था और स्वय सडक पर एक किनारे खडा हो गया था दम लेने के लिए । मुफ्त म मौत मोल लेने का क्या लाभ था ।

वही धीमी धीमी पीडा आज भी जाग उठी थी । वह चुप-सा हो गया । नौकर सूट प्रेस कराने गया और वह स्वय पानी की बालटी उठा कर गुसलखाने मे नहाने चल दिया । टेलीफोन भी उठा कर गुसलखाने के पास रख लिया । गुसलखाने की चटखनी लगाए बिना ही नहाने

लगा । घर मे और कोई था ही नही । बदन पर पानी डालते हुए भी उसकी निगाह टेलीफोन पर टिकी रही । टेलीफोन का उसे बहुत सहारा था । मानो गुसलखाने के बाहर डाक्टर बैठा हुआ हो स्टूल पर। दिल को ज़रा भी कुछ होता तो गसलखाने की चटखनी भी खोलने की ग्रावश्यकता नही थी । डाक्टर को फोन किया जा सकता था । कपडे पहनने की भी ज़रूरत नही थी । वह निश्चिन्त हो गया ।

उसके देखते-देखते पडोसिया का बिल्ली का बच्चा खिडकी मे से कूद कर टेलीफोन के पास ग्रा कर बठ गया । चुपचाप ।

उसने बिल्ली के बच्चे के बारे मे सोचना शुरू कर दिया । इसे ग्राज भूख नही लगी थी । शायद ग्रपने मालिका के घर से ही पेट भर कर खा ग्राया था । नही तो सदा "म्याऊ म्याऊ" करते हुए भूखा ही इस घर मे ग्राता था और वह कुछ न कुछ उसके ग्रागे डाल भी देता था —डबल रोटी का पीस, ग्रामलेट का टुकडा, या कोई हड्डी । ग्रगर खिलाने के लिए नही था ता पालने की क्या ज़रूरत थी ? कितना सीधा था विचारा—एक ग्राध बार खाने को मागता था, खाकर फिर नही मागता था । पर ग्राज कुछ उदास बैठा था। जिस प्रकार चुपचाप वह बैठा था उससे उसका पेट भरा होने का ग्राभास नही होता था । शायद सामने वाले घर के विलाप से डर गया था वह। इतने ज़ोर-ज़ोर से रोने से क्या बनना था ? चोट बहुत गहरी थी । पर रोने से कौन-सा गया हुग्रा प्राणी लौट ग्रयेगा ? उसे बिल्ली के बच्चे की दशा पर तरस ग्रा रहा था । अब उसके ग्रपने दिल की घबराहट बद हो चुकी थी । ध्यान बिल्ली के बच्चे की उदासी की ओर था । उसकी समझ मे यह नही ग्रा रहा था कि सामने वाले इतने ज़ोर-ज़ोर से क्यो रो रहे हैं ।

नौकर जब सूट ले कर ग्राया, तब वह नहा चुका था । उसने शीशे मे देखा तो उसके चेहरे की रगत ठीक थी । ग्राखो मे चमक भी थी । ढलकते हुए मास का तो ज़िक्र ही क्या । उम्र ग्राने पर हर एक का मास ढलकने लगता है । उसने सूट पहन कर फिर ग्रपने ग्राप को शीशे मे देखा । उसे ग्रपने मुह की त्वचा भी ठीक ही लगी। ग्रच्छे

कपडे से भी आदमी निखर जाता है । पद्रह बरस पहले जब उसने रेडियो के दफ्तर मे काम करते हुए यह सूट पहना था तो एक बहुत ही झेंपू और शर्मीली लडकी से भी प्रशसा किए बिना नही रहा गया था । 'आप के सूट का रग इतना साफ है और कपडा इतना मुलायम कि जी करता है इसकी जेबो म हाथ डाल लू" मानो कह रही हो "जी करता है आपको कस कर आलिंगन कर लू ।"

चलो, इन बातो मे अब क्या रक्खा है । उससे कम आयु के लोग परलोक सिधारने लगे थे । मुश्किल से चालीस वष की आयु होगी सामने के घर मे रहने वाले की, नौकर ने बताया था। कितना बडा जुल्म था । छोटे छोटे बच्चा का क्या बनेगा, विधवा किसके घर बठेगी? इतनी अच्छी सेहत का मालिक था कि उसने जीवन का बीमा भी नही करवाया था । बीस वष हो गए थे नौकरी करते, पर कही पक्का (पर्मानेंट) भी नही हुआ था अभी तक । एक दफ्तर मे रहता तो पक्का होता । नौकर न जाने क्या कुछ बताए जा रहा था मरने वाले के बारे मे ।

सब जा रहे हैं मैं भी हो आऊ उसने सोचा । पर वह किसी को भी नही जानता था । बिल्ली के बच्चे वाले पडौसी से थोडी बहुत दोस्ती थी । वह सवेरे की डयटी पर रेडियो के दफ्तर गया हुआ था । वहा जाकर मिलेगा भी किससे ? किसी को जानता ही नही था । पास खडा हुआ कोई आदमी कोई काम ही बता दे । सौ काम थे करने को । श्मशान घाट वालो से सस्कार का समय नियत करना था । एम्बुलैंस बुक करनी थी । अर्थी, घडा चदन की लकडी, न जाने क्या कुछ कहा मिलता था । पिछले दिनो उसके एक मित्र की अनुपस्थिति मे उसके मित्र के पिता की मत्यु हो गयी थी तो सारे सस्कार उसन ही किए थे । एक कदम भी आचाय की आज्ञा के बिना नही चल सकता था। बिजली के श्मशान का प्रस्ताव किया था तो उसके मित्र की पत्नी ने उसे नही माना था । उसने ऐसे रो कर कहा था कि वह भी दूसरी बार नही कह सका था । पर यहा तो उससे किसी को क्या कहना था । कोई जानता ही नही था उसे । कभी कभी लिफ्ट मे या सीढिया चढते उतरते कोई सिर झुका देता था तो वह भी झुका देता था ।

उसकी नौकरी भी कोई ऐसी नही थी कि वह लोगो के काम आ सकता। उसे किसी से वास्ता नही पडता था और न उससे किसी को। वहा रहने वालो की सख्या भी तो सास नही लेने देती थी। चार हजार गज जगह नही होगी—छह ब्लाक थे, हर ब्लाक की सात मजिलें और हर मजिल पर दस पद्रह फ्लैट, और हर फ्लैट मे पाच छह से कम जीव नही रहते थे। उस जैसे थे कितने अकेले रहने वाले—बस, पद्रह बीस और। किससे साझेदारी बनाता, किस से न बनाता। वह कर्जन रोड पर गुजरने वाली मोटरें देखने लगा।

उसने अपना ध्यान फिर मरने वाले के परिवार की ओर देना चाहा। एक पत्नी, तीन छोटे छोटे बच्चे। क्या करेंगे बिचारे! और फिर उसे अडे बेचने वाला याद हो आया जो गत सप्ताह इन्फ्लुएजा से मर गया था। अब उसकी जगह अडे कौन बेचा करेगा, उसने सोचा था। पर दो चार दिन मे ही उसके पुत्र ने, जो दुकान पर बैठता था, अडे बेचने वाली साइकिल सभाल ली थी, और जो उससे छोटा था, वह दुकान पर बैठ गया था। एक सप्ताह मे ही काम पहले की तरह चलने लगा था। पर इस सरकारी नौकर के टब्बर का क्या बनेगा, बिचारे का, जिसे प्राविडेंट फड के चार पैसा के सिवा कुछ नही मिलना था। मारे मारे फिरेंगे रिश्तेदारा पर बोझ बनते और उनसे धक्के खाते। नाश्ता करते हुए वह इस प्रकार की अनेक बातें सोचता रहा। कच्ची नौकरी भी एक अभिशाप है। पर वह किसी के लिए क्या कर सकता है?

नाश्ता करके उसने आदम-कद शीशे मे अपने आपको सिर से पैर तक देखा। कोट के कालर मे गुलाब का फूल अटकाया और दफ्तर जाने के बारे मे सोचने लगा। वह अभी गुलाब के फूल के बारे मे ही सोच रहा था कि उसके पैरो के पास कुछ सरका। उसने देखा बिल्ली का बच्चा धीरे धीरे चल रहा है। सामने वाले घर की मृत्यु से उत्पन्न हुई खामोशी मे वह भी चुप हो गया था। जानवरो में कितनी समझ होती है। उसने अपने कोट के कालर पर लगाया हुआ फूल एक बार फिर देखा उसका जी किया कि आज अपने दफ्तर जाने की बजाय रेडियो के दफ्तर मे काम करते हुए जिस लडकी से उसका परिचय हो

गया था, आज उससे ही मिल आए । उसके चेहर पर उसने कभी उदासी नही देखी थी । वह वैसी की वैसी हसमुख थी, विवाह से पहले की भाति ही । उससे मिले जैसे मुददतें ही हो गयी थी । विवाह के कितनी खिलाफ थी वह, विवाह से पहले। "सरकारी नौकरी मे इतना प्राविडेंट फड तो मिल ही जाता है कि आदमी एक मकान बना ले। मकान के लिए किरायेदार भी मिल जाते हैं और उनके बच्चे भी होते हैं । घर का घर, परिवार का परिवार", वह कहा करती थी । अब कितनी खुश थी अपने पति के साथ, जैसे ईश्वर मिल गया हो । चला उसके ईश्वर का ही हाल चाल पूछते हैं । और नही तो चार बातें ही करेगी । उसका चेहरा देखते ही उदासी दूर हो जाती है । चारो ओर उदासी ही उदासी। बिल्ली का बच्चा कैसे पत्ते की भाति हिलता फिर रहा है । उस लडकी के सिवा इतनी उदासी को कोई दूर नही कर सकता । उसने रेडियो स्टेशन जाने का फैसला कर लिया ।

मृत्यु वाले घर के बाहर इकट्ठी हुई भीड उसे फिर अपनी जगह पर ले आयी। बिचारों के साथ कितना जुल्म हुआ है । पर वह भी क्या कर सकता है । जानता भी तो नही कि कौन मर गया है । सवेरे पता लगेगा कि तीनो मे से किस आदमी ने स्कूटर स्टाट नही किया । शायद स्कूटर वाला ही मरा है कोई ।

रेडियो स्टेशन जाने के लिए चलने लगा तो उसके पैर पर बोझ -सा पडा जैसे किसी ने कबल फेंक दिया हो । पर यह तो बिल्ली का बच्चा है । कैसे गुडमुडी मार कर बैठा है । — चुपचाप और उदास। शायद इसे फश ठडा लग रहा है । उसके पैरो की गर्मी ने बूटो के पजे का चमडा भी गम कर दिया है । जानवर कितना समझदार होता है । जैसे ठडे फश से बच कर गम बिस्तर पर आ बैठा हो ।

जानवर को पनाह और गर्माइश देने की भावना न उसके अपने मन मे भी एक प्रकार की गर्माइश ला दी । उसका जी किया कि वह बिल्ली के बच्चे को अपनी शरण मे बैठे देखता रहे। कितने मूख हैं बराबर के घर वाले। जानवर पाल लेते हैं न खाने को पूरा दे सकते हैं और न सर्दी-गर्मी से बचाव करते हैं । उसके घर मे किस बात की कमी थी कभी भूखा नही जाने दिया बिल्ली के बच्चे को। शीशे के सामने वाले

सत सिंह सेखो

पेमी के बच्चे

कोई बीस साल पहले की बात है। मैं सात बरस का था और मेरी बडी बहन ग्यारह बरस की थी। हमारा खेत घर से ढाई मील भर की दूरी पर था। इस खेत के बीचोबीच एक बडी सडक गुजरती थी जिस पर पठानों कबाइलियों और परदेसियों का बहुत आना जाना रहता था। हम सब बच्चे जिन्हें कबाइलिया, पठानों से घर बैठे भी डर लगता था, इस सडक पर किसी सयाने के साथ के बिना जाते बहुत भय खाते थे। पर टटा यह था कि दिन में एक-दो बार हम खेत पर बापू की और कमेरों की रोटी पहुंचाने जरूर जाना पडता था और हर रोज हमारी दशा एक दुगम घाटी से गुजरने जसी होती थी।

हम आमतौर पर घर से तो हिम्मत करके अकेले ही चल पडते थे, पर जब सडक दो तीन फर्लांग की दूरी पर रह जाती तो, रजबहे का पार करते समय रुक जाने वाले मेमनों की तरह खडे हो कर इधर उधर देखने लगते ताकि गाव आने-जाने वाले किसी सयाने व्यक्ति की शरण ले कर इस भय-सागर को पार करने योग्य हो जाए।

हमे धार्मिक शिक्षा भी कुछ इस प्रकार की मिल रही थी कि ऐसे भय हमारे स्वभाव का हिस्सा बन गए थे। प्रतिदिन सध्या समय हम घर पर बडो से नरक स्वग की कहानिया सुनते। स्वग तो हमे खेल के अलावा और कही कम ही प्राप्त होता पर हर स्थान पर नरक अन गिनत मिलते। सबसे बडा नरक मदरसा था और अगर उससे किसी दिन छूट जाते तो खेत पर रोटी देने जाने का नरक सामने आ जाता। गरज यह कि हमारे अनजाने रास्ते के हर मोड पर नरक घात लगाए खडा होता। क्या जाने इस सडक का भयसागर बाधने के कारण हमे खेत की ओर जाना नरक लगता था, या खेत पर रोटी ले जात समय

इस सडक को पार करना पडता था, इसलिए यह हमे भय-सागर दिखायी देता था, मैं इसके बावत यकीन से कुछ नही कह सकता। यह मुझे पता है कि खेत स्वर्ग था और रोटी ले जाने की परेशानी नरक और वह बडी सडक—बीच म पडने वाला भय-सागर।

जाडो के दिन थे। हम दोनो बहन-भाई दोपहर की रोटी लेकर खेत की ओर चल पडे। सुहानी धूप थी और हम चलते हुए भी मानो जाडे की धूप मे नीद की गरमाई ले रहे थे पर दिल मे सडक पार करने का डर चूहे की तरह कुतर रहा था।

हमने डर को दबाने का एक साधारण उपाय बरतना चाहा। बहन मुझे एक कहानी सुनाने लगी। "एक था राजा। उसकी रानी मर गयी। मरते समय रानी ने राजा से कहा तुम मुझे एक वचन दो।" राजा ने पूछा, क्या ?"

मैंने कहानी की ओर से ध्यान हटाकर पीछे गाव की ओर देखा कि कही कोई आदमी हमारे रास्ते स ही जाने वाला आ रहा हो।

"तुम सुन नही रहे हा भाई।" बहन ने मेरे कधे का हिला कर कहा।

"नही, मैं सुन रहा हू" मैंने भाइयो वाली गुस्ताखी के साथ जवाब दिया।

'अच्छा जब वह रानी मरने लगी तो उसने राजा को बुला कर कहा, "तुम मुझसे इकरार करो।" राजा ने पूछा, "क्या ?" रानी ने कहा, "तुम और ब्याह मत करना। सच, मैं बताना भूल गयी, रानी के दो बेटे और एक लडकी थी।"

हमे राजा और रानी माता पिता जैसे ही लगते थे। अगर हमारी मा मरने लगे और हमारे पिता को यही वचन देने के लिए कहे—यह ख्याल हमारे अवचेतन मे काम कर रहा होगा। मुझे वह लडकी अपनी बहन लगी और उसका बेटा मैं स्वय।

मेरी बहन गाव की ओर देख रही थी। 'सुना भी आगे" मैंने उसे डपटकर कहा।

"रानी न कहा मेरे बेटा और बेटी को सौतेली मा दुख देगी।" बहन ने और भी मोटी औरत बन कर कहा। "इसलिए उसन राजा से यह वचन मागा।" राजा न कहा, "अच्छा, मैं वचन दता हू।"

—जैसे अगर राजा यह इकरार न करता तो रानी मरने से इनकार कर देती।

भले ही हम दोना को पता था कि दिन मे कहानिया सुनान मे राही राह भूल जाते हैं, हमने एक दूसरे को यह 'चेतावनी' नही दी और इस जानकारी को अपने दिला पर असर नही करने दिया।

पर राजा ने जल्दी ही दूसरा ब्याह कर लिया।"

'हू।"

पिछले मोड पर हमे एक आदमी आता हुआ दिखायी दिया। हमने चैन का सास लिया और उसे अपने साथ मिलाने के लिए रुक कर खडे हो गये। हमारी कहानी भी रुक गयी। पर वह आदमी किसी और तरफ जा रहा था हमारी तरफ नही आया।

जिस उद्देश्य का पूरा करने के लिए हमने इस कहानी का पाखड रचा था, वह पूरा नही हो सका। हमारा खयाल था, कहानी मे व्यस्त होकर हम अनायास ही सडक के पार हो जाएगे। पर अब जब सडक कोई एक फर्लांग दूर रह गयी तो हमारी कहानी भी ठिठक कर खडी हो गयी और किसी बडी आयु के साथी के आ मिलन की आशा टूट गयी। हम दोनो सहम कर खडे हो गए।

दस बीस कदम और चले तो हमारा डर और बढ गया। सडक पर एक तरफ काले ऊफ की वास्कट और पठानो जसी ढीली खुली सलवार पहने एक आदमी लेटा हुआ था।

'वह देख, बीबी। पठान लेटा हुआ है।" मैंने कहा।

उस आदमी ने करवट बदली।

"यह तो हिल रहा है, जाग रहा है" मेरी बहन ने सहम कर कहा, 'अब क्या करें ?"

'यह हमें पकड़ लेगा क्या ?'

'और क्या ?" उसने जवाब दिया ।

हम रात को घर से बाहर तो कम ही निकलते थे, पर हमने यह सुना हुआ था कि अगर डर लगे तो वाहगुरु का नाम लेना चाहिए, फिर डर दूर हो जाता है । हमारी मा हमें हमारे मामा की बात सुनाया करती थी । एक बार हमारे मामा और एक ब्राह्मण कहीं रात को किसी गांव के श्मशान के पास से गुजर रहे थे कि उनके पैरों पर बड़े बड़े दहकते हुए अंगारे गिरने लगे । ब्राह्मण ने हमारे मामा से पूछा "क्या करें ?" उन्होंने कहा, "पंडितजी ! वाहगुरु का नाम लो।" हमारे मामा वाहगुरु-वाहगुरु करने लगे, पंडित राम राम । अंगारे गिरते तो रहे, पर उनसे दूर । हमें इस बात की वजह से अपने मामा पर बड़ा गर्व था ।

"हम भी वाहगुरु करें ।"

'वाहगुरु से तो भूत प्रेत ही डरते हैं, आदमी नहीं डरते" मेरी बहन ने कहा ।

मैं मान गया । सड़क के किनारे लेटा हुआ पठान तो आदमी था, यह रब्ब से क्या डरेगा भला ?

बूटा सिंह

लावारिस

मल्होत्रा जब भी आफिस जाता और गली का मोड मुडने लगता, उसकी निगाह कालोनी के पार्क मे बठे बूढे सरदार पर जा पडती जिसके साथ एक दो बच्चे हमेशा होते । बच्चे सामने खेलते, सरदार बेंच पर बठा उन्हें बातें सुनाता—या अपनी रगीन और पुरानी यादो का ध्यान कर फिर से जवान बनने का जतन किया करता ।

बच्चे दूर चले जाते तो उन्हें पुकारता नगे पाव उनके पीछे दौड कर जाता । किसी का जागिया पिशाब से भीग जाता तो उसे उतार देता । किसी का जागिया उतर जाता तो उसे पहना देता । बच्चे लड पडते तो उन्हें उठाकर अपनी गोदी मे बिठा लेता । उसे यह खयाल कभी नही आया कि बच्चो के पर गदे हैं उसकी सफेद कमीज-सलवार को गन्दा कर देंगे और न ही कभी यह खयाल आया कि बच्चे के पिशाब के जागिये से उसके हाथ छू गए हैं । बल्कि बहुत दफा तो वह पास ही बहते हुए पानी मे जागिये को डुबो कर, अच्छी तरह निचोड कर सूखने के लिए डाल देता । न उसे घिन आती न गुस्सा । न जाने मोह माया का जाल था या उसका सदाचार-सगत कर्तव्य ।

सरदारजी का ऊचा कद खुली सफेद दाढी के खतो और निचले होठ और ठोडी के बीच डोरी मे लपेटे हुए बालो से जान पडता था कि बूढा अपने जमाने मे शौकीन मिज़ाज रहा होगा ।

मल्होत्रा जब भी दफ्तर जाता, वह सफेद कपडो वाला बूढा बच्चो के साथ बैंच पर बैठा दिखायी देता और जब वापस आता, तब भी बच्चा के साथ उसी बैंच पर दिखायी देता ।

कभी-कभी जब मल्होत्रा उसे पिशाव का जांगिया उतारते या पहनाते देखता तो उसे उस बाबाजी से चिढ़-सी हो उठती और वह सोचता "बूढ़े की अक्ल खराब हो गयी है। जो जंजाल सिर से उतर गए थे उन्हें फिर लिए फिरता है। इन्हें इनके माता पिता को दे और खुद सैर-सपाटे करे।"

दिल्ली में तीस दिनों मे पैंतीसों फंक्शन हो जाते हैं, पार्क में बैठने का क्या काम ? किसी जलसे में जाए, किसी सोशल फंक्शन में शरीक हो, कहीं हंसी, कहीं तमाशा। और कुछ नहीं तो जा कर लाइब्रेरी मे ही बैठा करे। बच्चे खिलाना भी कोई काम है। बाबा अभी अच्छा खासा मजबूत है। कोई काम करना चाहिए इसे। सौ काम हैं जिंदगी मे, सैकड़ो धंधे हैं। काम के बिना आदमी की मौत हो जाती है। बोरियत, उकताहट या हर समय बहुआ-बेटो की बातें या फिर मौत का इंतजार और अगले जन्म में स्वर्ग का लालच सब रोगी मनुष्य के मन की बातें।

बाबाजी ने ब्रेकफास्ट किया बच्चा को साथ लेकर पार्क मे आ गए। लंच टाइम में फिर घर। ईवनिंग टी के बाद फिर पार्क में। यह कोई काम है निरा धरती का बोझ

उसे इतने काम हैं कि इतवार के दिन भी कि एक मिनट को फुर्सत नहीं मिलती। चाहता है कि खूब सोने का मौका मिले। मगर सारे सैक्शन का काम, हाऊसिंग सोसायटी की सैक्रिटरीशिप, कला केन्द्र की मेम्बरी नाटक होते, रिहर्सल होते वह सारी-सारी रात सो न सकता। नेहरू हाकी टर्नामेंट तो उसकी जान था। सौ काम छोड़ कर जाना पड़ता। उसकी पत्नी प्रायः बिगड़ उठती "यह मुआ टर्नामेंट आता है यह घर-बाहर सब भूल जाते हैं। चाय पीने तक की फुर्सत नहीं मिलती। भागे भागे आए दो टोस्ट और चाय का कप पेट में डाला और स्कूटर दौड़ाते हुए चले गए। बहुत खीज उठूंगी तो बाहा में भर मुंह चूम, जल्दी से चले जाएंगे, फरेबी जमाने भर के।"

उसे स्टेडियम में प्रवेश करते देख दर्शक आवाजें कसते, "चाचा, इधर आ जा, कुर्सी खाली रखी हुई है।' 'इटो इधर, आली लाइन से दो गज पीछे।" वह यह आवाजें सुन कर, सबकी ओर देख कर, हाथ हिलाता मुस्कराता और किसी भीड़ के बीच जा कर बैठ जाता।

दशक जानते थे, मल्होत्रा हाकी का दादा है। एक-एक खिलाड़ी की कमजोरी जानता है। जाफर, दारा और ध्यानचद से ले कर अब तक के सब खिलाडियों की नस नस से वाकिफ़ है और जानता है कि कौन-सा खिलाड़ी कहां फिट हो सकता है।

"अरे हम दारा और जाफ़र के साथ के हैं। आज भी ध्यानचद कहीं देख लेता है तो फ़ौरन गले मिलता है। उसे याद है मल्होत्रा उसके साथ राइट आउट रहा है।"

"अंकल, आप अब बूढ़े हो गए हैं।

मल्होत्रा ने उस लड़के की ओर घूर कर देखा और कहा "सूअर का बच्चा! मुझे बूढ़ा बनाता है। ला इधर हाकी दे, अगर बाल लेकर तीर की तरह सीधा गोल म न जाऊं तो मेरा नाम मल्होत्रा नहीं। बेटा! यह खेल सिर्फ ताकत का नहीं अक़्ल और तकनीक का भी है। भर लेते हैं मामा चाचा के लड़के '

मल्होत्रा को ध्यान आता कि उस बूढ़े सरदार को और कोई काम नहीं है, सिवाय बच्चे खिलाने के। 'अरे पागल और कुछ नहीं तो बुढ़िया को अपने साथ ले आया कर। पार्क मे बैठ कर दो घड़ी पुरानी यादों को हरा कर लिया कर। मूर्ख! धरती का बोझ।"

वह नफ़रत भरा दिल लिए लौटता और सीधा उस कमरे मे जाता जहां उसकी बीबी लेटी होती। पहुचते ही उसके माथे को छू कर पूछता, "तबीयत कैसी है? दवा खायी या नहीं?'

'ओहो। पहले पानी तो पी लो, फिर मेरी दवा के बारे में पूछ लेना।'

"कमाल है आज तो बेगम बड़े जलाल में आयी हुयी हैं।"

जल गया हमारा जलाल। न जाने यह कब खतम होगा?"

वह कोट उतार कर उसे पास पड़ी हुई मेज़ पर रख कर जूते खोलता और कहता, 'तुम्हें देख कर भूख प्यास अपने आप ही गायब हो जाती है।

"ग्रादमी को जो ग्रादत पड जाती है वह लाख जतन करने पर भी जाती नही । ग्रापके पास यह बढ़िया ट्रिक है औरतो को फुसलाने की "

"तुम्हारे सिवा तो और कोई फसी नही । इसलिए तुम्हारी खुशामदें करनी पड़ती हैं "

"साहिबजी ! छोडो इन घिसी पिटी बातो को । कानो के ऊपर के बालो की मोटी तह सफेद हो गयी है । कहा करते थे, जनक ! मैं बढ़ा नही हाऊगा । मेरी बात मानो, बालो को रग लो, बाला मे खिजाब लगा लो, कहीं बलबीर मिल गयी तो बिचारी को धक्का लगेगा —"यार बूढा हो गया है ।" वह सरदारों की बेटी है, कच्चे अंडे पीने वाली, हमारे जैसी चिडिया की बेटी नही, जो चुप रह जाएगी ।"

"तुमने कभी बलबीर का खयाल ही नही ग्राने दिया । मैं तो ग्रपने ग्रापको ग्रभी भी जवान समझता हू । ग्रगर तुम्हें बढा ग्रच्छा नही लगता तो तुम्हारे काले बालो में सिर रगड लगा "

"हमने कभी इन्कार किया है शाहजी । ग्राप हमे इस तरह भी ग्रच्छे लगते है ईश्वर ग्राप का रक्षक रहे ।" जनक रानी ने ग्राह भर कर कहा ।

मल्होत्रा चाय पीने लगा और जनक रानी सोचने लगी—इस हल्के बुखार ने मेरी देह सुखा दी है, फिर भी मुझ पर ग्रभी तक इनका मोह नही टूटा है । कहते हैं तुमने मेरे दिल से बलवीर को भुला दिया है बलबीर ने कितने सदेसे भेजे, फिर खुद कार लेकर ग्रायी और बोली, "भाभी इस मछदर को साथ लेकर ग्राना । इसे तुमने ही रस्से मे बाधा है, नही तो यह मजबूत हाथा मे से भी निकल जाने वाला ग्रादमी है । हमे नयी कोठी ग्रलाट हुई है । बहुत-सी सब्जिया लग यी हैं, पाच पेड ग्रमरूदो से लदे पडे है ।' मेरे राजा को न बलवीर की कोठी ने ग्राकर्षित किया, न उसमे लगे पेड पौधो ने।

बलबीर ग्राज भी सुदर है । एक जैसे दो लडके । ग्रब फिर पके हुए सिंदूरी ग्राम की तरह खुशबू बिखेरती फिरती है ।

मेरे राजा, आपने चमेली को नहीं, धूहर को पसंद किया। जनक तुझे राम जैसा आदमी मिला, पर लम्बी जिंदगी रास नहीं आयी। करमों की बात है

पीहर जाती तो एक सप्ताह भी न रह सकती। माजी मिन्नत करती रहतीं, पिताजी सौ सौ लाड लडाते नहीं थकते थे और कहते "जनक बेटा! एक हफ्ते तो रह जाओ।" मेरे पहुंचने से पहले ही इन की चिट्ठी पिताजी के पास पहुंच जाती। मुझे भी कोई बहाना चाहिए था, पिताजी के घर में मेरा जी नहीं लगता था, कुछ कह भी नहीं सकती थी। घंटे दो घंटे मां से बातें कर लेती तो फिर कुछ बात करने को न रह जाती। पिताजी बच्चों को बाजार ले जाते, थैले भर भर कर फल लाते, लेकिन मेरा ध्यान इन्हीं की ओर रहता। अपने राजा के बिना रातों को नींद नहीं आती थी। मां को क्या बताती कि मुझे नींद क्यों नहीं आती।

गाड़ी से रात को घर पहुंचती। बच्चे सो जाते। बस उनके लिए बिस्तरे बिछा ही रही होती कि पीछे से आ मुझे बांहों में कस कर बच्चों की तरह उठा लेते। वह लाड करते, मेरी बुद्धि छीज जाती।

महाराज अब छोड़ दो, थक जाओगे। मैं पहले जैसी पतली नहीं हूं। फिर कहोगे बांह में बल पड़ गया है।'

'औरत को उठाने से कभी बल नहीं पड़ते। औरत बीस मन की भी हो, उठा ली जाती है। तुम तो दो मन की भी नहीं हो। हम हाकी के खिलाड़ी हैं "

"बलबीर को भी बुला लेती हूं। दोनों को एक साथ उठा लेना। बीस मन नहीं तो तीन साढ़े तीन मन तो हो ही जाएगी।"

मेरी बात सुनते ही मुझे फर्श पर उतार दिया। "इतने साल बीत गए हैं तुम्हें आज तक अक्ल नहीं आयी। स्वादिष्ट खाना खाते समय मुट्ठी भर कर मिर्च डाल देती हो।'

यह गुस्सा बस मुंह फुला, करवट बदल कर लेट जाते। मैं जानती थी इनका गुस्सा बहुत देर रहने वाला नहीं होता, फिर भी मुझे मनाना पड़ता। इनका मुंह अपनी ओर करने के जतन करती, बांह

खीचती, और मुह से मुह लगा कर छेडा करती तो झट स मुझे आलिगन म ले अपन ऊपर खीच लेत, और कहत "देखा हमारा जाल, चालाक मछली अपने आप काबू म आ जाती है।   ओह मेरे खुदा ! वह अच्छे दिन सपना हो गये ह।

हम आपके पास आए। आपको नौकरी मिली। एक दिन तगी का नही जाना। हम अब चल रहे हैं और आप रिटायर होने वाले हैं। अच्छी यारिया बस कुछ इतनी ही होती है   जनक रानी ने आखा म आसू भर कर पति की ओर देखा।

जनक रानी परलोक सिधार गयी। मल्होत्रा पर उदासिया का पहाड टूट पडा। लगता था मानो जनक रानी सारे चाव अपन साथ ले कर चली गयी हो। खाली खाली कमरा, उदास चेहरे। कोई पूछने वाला नही था, "बाबजी, कहा जा रहे हो ? कब आओगे ?"   उदासीनता भरे वायुमडल म अकेला बठा मल्होत्रा सोचता 'इतनी तब्दीली दो चार हफ्ता मे ही हो गयी है। ठीक है, न कभी दो जीव साथ आए हैं, न कभी साथ गए हैं। जिंदगी का चक्कर इसी तरह ही चलता है।

तीन बेटे, एक बेटी, दिल्ली शहर मे मकान। दो बेटा और एक बेटी का ब्याह जनक रानी अपने हाथो कर गयी हैं। मेरी जिम्मेदारिया कौन-सी बाकी हैं ? बेटा नेक और आज्ञाकारी है   "

'राय साहब, पसे का धोखा न खाना, बेटा बेटी सब पसे के यार है   '

'चद्र प्रकाश दोस्त ! मैं पसा मा के पास ले जाऊगा। सब कुछ इन्ही लोगो की अमानत है। आज ले लें, चाहे कल।" मल्होत्रा यह कह तो जाता, परन्तु उसके भीतर अनेक प्रकार की शकाए उत्पन्न हो जाती। दोनो बेटे, दफ्तर जान स पहल, और वापस लौटन के समय, उसके कमरे म से हो कर जाते। तबीयत का हाल पूछते। दोनो बहुए कुछ ना कुछ खाने के लिए देती ही रहती। वह सोचता एक जनक रानी ही नही रही, नहा तो और किस बात की कमी है। पैसा पास है, कोठी के एक पोशन का किराया आता है, कुछ बक स सूद मिल जाता है और पेन्शन अलग   "

मल्होत्रा उस पलग पर बठा रहता जिस पर वह जनक रानी के साथ बठा करता था, सोया करता था। पुरानी यादें उसके दिमाग में

चक्कर लगाती रहती थी। कुछ महीनो के बाद उसके स्वास्थ्य में परिवर्तन आने लगा। सिर के बाल कनपटियो के ऊपर बहुत सफेद हो गए। और घर मे घुर घुर होने लगी।

एक दिन मल्होत्रा के मझले बेटे ने आकर कहा "बाबूजी, आप छोटे कमरे में सो जाया कीजिए, हमारे लिए वह छोटा है।"

"हां–हा, ठीक है।" यह कह कर मल्होत्रा ने अपने पुत्र को सिर से पैर तक देखा।

"कब खाली करेंगे ?'

'अभी, अभी। मेरा क्या सामान है।" दो चार किताबें, अपना बिस्तर और जनक रानी की तस्वीर उठा कर मल्होत्रा छोटे कमरे मे आ गया। 'अकेले विधुर व्यक्ति के लिए यह कमरा भी छोटा नही है।' व्यथ मे ही घर का हर आदमी इसे छोटा कमरा कहता है। मल्होत्रा ने यह बात सोचते हुए अपने मन में कहा 'फिर राजिन्दर के घर बच्चा होने वाला है, उनके लिए तो यह कमरा छोटा ही हो सकता है।"

नेहरू हाकी टर्नामेंट आया। मल्होत्रा नही गया। उसे लगता जसे उसका अन्तर सील गया है। क्या करने जाना है ? लौटते समय कोई बस नही मिलती। मिल भी जाए तो उस जमे बूढ़े की दुगत हो जाती है।

"बाबूजी। आप इस बार नेहरू टूर्नामेंट देखने एक दिन भी नहीं गये ?" बडे बेटे ने कहा।

"हू। मेरे घुटनो म दद है"

"बाबजी। फाइन आट थिएटर म आपेरा चल रहा है "

'हू "मल्होत्रा चुप रहा। वह सोच रहा था कोठी के पोशन का किराया और दो सौ छोटे बेटे बिट्ट को पूना भेजना है। अगर खच इसी तरह रहा तो क्या बनेगा ? धेले की कनी से आमदनी नही रही। उसकी कौन सी मा जिंदा है ? डाक्टर बन जाएगा फिर सब कुछ मेरे लिए ही है न " यह कुछ सोचते हुए मल्होत्रा ने ऐनक उतार कर आखें साफ कर ली।

रेडियो पर हाकी की कमेन्ट्री सुन कर कभी कभी मल्होत्रा दुखी हो उठता और सोचता "लोग समझते होंगे चाचा राम नाम सत्य हो गया होगा । ठीक ही सोचते होंगे । अब हमारा यह काहे का जीना है ।

सवेरे वह सारे घर से पहले उठता । दूध ले आता । डबलरोटी, अंडे, सब्जी का थैला अभी आ कर रखता तो बड़ी बहू कहती "पिताजी ! सरसों का तेल नहीं है "

"अच्छा ! बेटी ! मैं जाता हूं । पनस्तरी देना "

"आलू और गोभी भी लेते आइएगा । नाश्ते के लिए पकौड़े बनाने हैं "

मल्होत्रा घुटने के दर्द को सहता, कमर पकड़े फिर सीढ़ियां उतर जाता ।

पूना से छोटा बेटा भी आ गया था । उसकी पढ़ाई के तीन महीने शेष थे । उसने आते ही हुक्म चला दिया "मुझे पढ़ने के लिए अलग कमरा चाहिए ।"

कोई सबील नहीं बन रही थी । सर्दी का मौसम । क्या किया जाए ? घर का प्रत्येक प्राणी अपनी जगह पर सच्चा था । अन्त में, बहू ने कहा "लड़के की पढ़ाई के दिन हैं । और कहां चला जाए ? बाहर एक अच्छा सा कमरा डेढ़ दो सौ से कम में नहीं मिलता । दूध, चाय, और खर्च जैसा दिल्ली वैसा पूना में । इतने बड़े मकान में एक आदमी तो यूं ही समा सकता है । लड़के को पिताजी वाला कमरा दे देते हैं "

"और पिताजी ?"

'वह स्टोर में चले जाएंगे, हमारा स्टोर लोगों के कमरों जैसा है ।"

'यह कैसे हो सकता है ?"

"हो क्यों नहीं सकता ? गुजारा करने वाले क्या नहीं करते ? स्टोर में दीवान बिछा हुआ है । हां, बिस्तरे हम अपने अपने कमरों में रख

लेंगे । ' या टोर म जो वडा ट्रक पडा है उस पर रख दिया करेंगे। मिसेज सचदेवा के ससुर भी तो स्टोर म गुजारा करते हैं । वह भी तो अफसर रिटायर हुए थे।"

इस न्यायशील दलील के आगे कौन ठहर सकता था ?।

दोना वहुआ न पिताजी का बिस्तर स्टोर में लाकर रख दिया। मल्होत्रा कोइ एतराज़ न कर सका और अपनी दो चार किताबें और जनक रानी की तस्वीर उठा लाए । जब वह जनक रानी की तस्वीर को साफ कर रहा था बडी बहू ने छोटी बहू से आख से इशारा कर के कहा, देखा ससुरजी को अभी तक बुढिया का मोह नही गया है । उठाये फिरते हैं अपने साथ साथ उसकी मूरत और उसे झाड पोछ कर रखते हैं मीत की तरह।"

"भाभीजी । आप समझती हैं बूढे मे जान नही है ? बडे की हिरस जवान होती है ।"

"सीने से लगा कर सोते होंगे' बडी बहू ने मुह बना कर कहा।

"जाडे हैं न, अपने आप को गरम रखना ही पडता है। छोटी बहू ने कहा । दोना जिठानी देवरानी हस पडी ।

न जान मल्होत्राजी को वहुओ की बातो का या उनकी मुस्कानों का अनभव हो रहा था या नही पर वह बोले कुछ नही । स्टोर म उस पछी की तरह फडफडाते रह गए जिसमे उडने की शक्ति न रह गयी हो।

वह आकर बिस्तर पर गिर पडे और उनकी आखो के सामने उस समय का दृश्य आ गया जब वह इस मकान मे वह दो जीव ही रहते थे । जनक रानी अपने रग जसी ही पिंक रग की महीन-सी नाइटी पहन कर भीतर बाहर घमती फिरती और कहा करती तुम्हारी इतनी छुट्टिया पडी हैं आज दफ्तर नही जाओगे तो क्या हो जाएगा ?"

मल्होत्राजी की आखें सजल हो आयी। उन्होंने रजाई मे से अपना मुह बाहर निकाल लिया और सोचने लगे 'मेरा प्रोग्राम तो जनक रानी को लेकर कन्याकुमारी जाने का था, जगनाथ पुरी, दार्जिलिंग

तभी घर के भीतर से शोर-सा सुनाई दिया, माना गोली चल रही हो । अपनी अपनी तैयारी के लिए भाग दौड़ मची हुई थी, नाश्ते को देरी, बच्चा की चीख-पुकार।

छोटी बहन पाच छह महीने का अपना बच्चा, जो रो रहा था, पिताजी की रजाई के अन्दर डालते हुए कहा "पिताजी, इसे अपनी रजाई के अन्दर खूब गरम कर दीजिए, दुष्ट रोए ही जा रहा है। मैं दो पराठे सेंक लू ।"

सुजान सिंह

कपूर और मजदूर

करमचद जब मनेजर साहिब के दफ्तर से झाड खा कर निकला तो उसकी हालत बहुत बुरी थी। उसे इतने कठोर बर्ताव की भी आशा नहीं थी। कपूर वीविंग एड स्पिनिंग मिल्ज के मालिक से वह अपने आपको एक बहुत बडे रिश्ते से सबधित समझता था। वह खुद भी कपूर था और इसी रिश्ते को जता जता कर कपूर साहब और उनके मैनेजर साहब ने उससे "मजदूर सभा" के विरुद्ध कई काम करवाए थे। करमचद मजदूर होते हुए भी अपने आपको कपूर साहब की मूछ का बाल समझता था। पर नफे-बाजी की दुनिया मे कौन किसका होता है। मनेजर मेहता साहब अपने आपको कपूर साहब के सगे का दाहिना हाथ समझते थे।

आज जब वह अपने उगलियो से रहित हाथ वाली बाह को गले मे पडी हुई स्लिग मे डाले मनेजर साहब से अपने स्थायी अग भग के कानूनी मुआवजे के सबध में पूछने आया था तो मनेजर साहब की आखें ही बदली हुई थी। आज से तीन महीने पहले तेरह फरवरी को यह उगलिया कटने वाली दुघटना उनकी फैक्टरी मे पहली शिफ्ट मे हुई थी? यह दुघटना सबके सामने हुई थी और बडी बात यह थी कि इस दुघटना की जिम्मेदारी मनेजर साहब पर आती थी। मशीन की पुलिया और पट्टे बदलने वाला चिमटा टूट गया था। करमचद ने मशीन को बद कर देना चाहा था, पर माल के भाव की तेजी के कारण मैनेजर साहब ने कहा था कि मशीन को चलता रहने दिया जाए। "पट्टे का क्या है वह तो हाथ से धक्का दे कर चढाया उतारा जा सकता है।" उसने करमचद से कहा था "और तुम तो बहुत ही होशियार कारीगर हो।"

करमचद ने मशीन चला रखी थी। मजदूर और कारीगर शोर मचा रहे थे कि मशीनो की चाल बढा दी गयी है। चाल तो बढी हुई करमचद को भी मालूम हो रही थी लेकिन वह सदा मालिको का साथ देता रहा था। इससे पहले कि मजदूर मिलकर कोई कदम उठाए

करमचद की एक चीख सुनायी दी थी और उसका लहू-लुहान हाथ अ स-पास काम कर रहे मजदूरो ने देखा था। मजदूरो ने अपनी मशीनें बंद करके करमचद को सभाला था। पटटे को धकेलते हुए, शायद तेज गति के कारण, उसकी उगलिया पटटे के जोड से उखडी हुई कधी मे फस कर कट गयी थी। उनमे दो उगलिया जोड पर मास से थोडी-थोडी जुडी हुई लटक रही थी।

फिर मनेजर और चौकीदारो ने उसे मजदूरो के पास से लेकर उसकी देखभाल की थी। मजदूर समझते थे कि मालिको का खास आदमी होने के कारण उसे उनकी कोई आवश्यकता नही है। कई मजदूरो के मन मे उसके मजदूर सगठन के विरोध को लेकर बहुत गुस्सा था और कई मजदूर उसे नफरत की निगाह से देखते थे। जो कुछ समझदार थे, वह समझते थे, करमचद मालिको का आदमी होने के कारण उसके लिए खुद ही सब कुछ करेंगे। हा, उन्होंने मशीनो की गति तेज किए जाने पर आपत्ति की। किन्तु, यह माने बिना कि गति तेज करवाई गयी थी, मालिक गति फिर ठिकाने पर ले आए थे।

आज करमचद ने यह जाना कि उसके साथ हुई दुघटना की रिपोट दज भी नही की गयी थी। उसे कुछ दिन गैरहाजिर दिखा कर फक्टरी से हटा दिया गया था।

अब उसके सामने पिछली बातें और घटनाए, सक्षेप लिपि के समान मानसिक सक्षेप चिह्न बन कर और चित्रपट की कथा के समान वर्षों और दशको को सकिडो और मिनटो मे बदलते हुए बीतने लगी। उसे यह कह कर एक प्राइवेट डाक्टर के पास भेजा गया कि पैसे दिए बिना सरकारी अस्पतालो म रोगियो पर ध्यान नही दिया जाता। डाक्टर अच्छा सजन था, और उसने उसका लहू बद करके ठीक इलाज शुरु कर दिया था। बाद मे वह टीके आदि भी घर जा कर खुद लगा दिया करता था। उसने करमचद से अपने बिलो की रकम की माग की थी। करमचद ने कहा था "डाक्टर साहब! मैं कपूर साहब का खास आदमी हू। मैं भी कपूर हू।"

डाक्टर को बिल बडी आसानी से लेने थे, इसलिए उसे बिलो को पेश करने की कोई जल्दी महसूस नहीं हुई। दो महीने करमचद को घर के खर्च के लिए कुछ न कुछ मिलता रहा, लेकिन जब तीसरे महीने उसे किसी ने कुछ न भेजा और डाक्टर भी पट्टी करने मे लापरवाही दिखाने लगा तो करमचद ने सोचा कि वह खुद जाकर मैनेजर साहब से बात करे। पर मैनेजर ने तो सीधे मुह बात करने से भी इन्कार कर दिया था। उसके क्लर्क ने करमचद को बताया था कि फक्टरी मे तेरह तारीख को हुई कोई दुर्घटना दर्ज नही है, और इसीलिए स्थायी अगभग के मुआवज़े के मिलने का सवाल ही पैदा नही होता था। उसने यह भी बताया कि अपना आदमी होने के कारण डाक्टर साहब का खर्च और उसकी आर्थिक सहायता भी सेठ साहब ने शायद अपने पास से कर दी हो।

करमचद अधेरे को उजाला समझने के जिस रोग मे ग्रस्त था, उसे अब वह पूरी तरह जान गया था। उसने समझ रखा था कि कपूर साहब से दुर्घटना की अपनी जिम्मेदारी छिपाए रखने के लिए मैनेजर ने यह सब कुछ किया होगा। अगर एक बार उसने कपूर साहब के सामने हाज़िर हो कर सारी बात कह दी तो सब ठीक हो जाएगा। दिन का उजाला देख कर भी वह वहम के जालो से भरी सुरग मे प्रवेश कर रहा था।

उसने कपूर साहब के कमरे मे जाने की आज्ञा मागी। अत मे धरना देकर वहा बैठने की धमकी देने पर उसे आज्ञा मिल गयी। करमचद ने सारी बात कह सुनायी, किन्तु कपूर साहब उस पर विश्वास ही नही कर रहे थे। वह जो कुछ भी कहता था उसे मान लेने वाले दिन मानो काफ़ुर हो गए थे। वह निराश होकर कपूर साहब के दफ्तर के बाहर आया और बाहर के गेट की ओर चल दिया। रास्ते मे उसे एक दो मज़दूर जाते हुए मिले थे। सरसरी तौर पर हाल-हवाल पूछा गया था। सदा मज़दूर सगठन का विरोध करने पर वह मन मे लज्जित था, इसलिए कपूर साहब से हुई असली बात किसी को नहीं बता रहा था। उसने निष्कर्ष निकाल लिया था कि सब कलें मालिक के घुमाने से घुमती हैं। उजाला फिर हो गया था। किए काम के बदले मे किंचित

उदार-हृदय से दी गयी पशगी उजरत के अलावा उस कभी कुछ नहीं मिला था और अगर कभी कुछ मिला भी था, तो वह मजदूरा की धम-कटौती मे से चार सौ बीसी द्वारा ही मिला होगा। मजदूरो के पास वह सहायता के लिए क्यो जाए ? उसे क्या हक है ?

मैनेजर साह्व ने भी शायद इसी विरोध का खयाल] रखा था। अब दम पद्रह रुपये एडवास, या चादी से कागज मे बदले हुए एक दो टुकडा के फेंकने का सवाल नही था, जिसमे से मजदूरा के लहू का नमकीन स्वाद आता था, अब तो हजारो की रकम का सवाल था। करमचद मेहनत करके उसके मोल का एक छोटा-अश प्राप्त करते हुए भी उसे मालिक का नमक समझा करता था। उसे धनो समाज के आचरण, धम कानून, साहित्य आदि से प्राप्त पेंचदार अनुभवो से यही ज्ञान मिला था कि धनी के धन से फैक्टरिया बनती हैं कच्चा माल आता है और इस प्रकार हमारा पारिश्रमिक हमारी मेहनत का मूल्य नही बल्कि धनी का दान मात्र है वह उसका नमक है। उन्हें कृपक और धार्मिक जागीरदार का नमक खाता दिखाई देता था। एक बार जब उसने किसी का इन बाता का सच्चा अथ समझाते हुए सुना था तो उसे नास्तिक कहा था। यद्यपि वह रोज मजदूरी बेचता था, उसकी समझ मे यह नही आता था कि मेहनत बिकाऊ वस्तु कैसे हो सकती है। पर मजदूरी कोई दीख पडने वाली ठोस वस्तु थोडे ही थी। किन्तु आज उसकी समझ मे आ रहा था। मजदूर का श्रम कच्चे माल को तैयार माल बना कर कच्चे माल का मूल्य बढाता है, पैसा नही। धनी और अकमण्य जागीरदार जो मजदूर और कारीगर को उसकी मेहनत के मूल्य का बडा भाग न दे कर, स्वय ऐश्वय और विलासपूण जीवन व्यतीत करता था उसमे मजदूर और कारीगर के लहू का नमकीन स्वाद था जा नरभक्षी घडियाल के समान, एक बार मुह को लगने पर कभी नही छूटता। कारखानेदार और जागीरदार मजदूर और कारीगर का लहू पीते थे, जिसमे से कुछ भाग मनेजरो और करमचद जैसे दलालो को भी दे देते थे। वह स्वय कुछ नही करते थे सब कुछ उनसे करवाया जाता था। करमचद को आज ज्ञात हुआ

कि कपूर साहब धनी हैं और वह मजदूर । कपूर होने की साझेदारी उनमे नही है ।

उसे गुस्सा आ गया । किन्तु वह अकेला था । गुस्सा गलत रास्ते पर पड गया । उसने सोचा फैक्टरी को आग लगा दूगा । फिर उस मजदूरों के साथ साथी के शब्द याद आ गए। उसने कहा था "निराश हो कर कई मजदूर मशीनो को कोसने लगते हैं। मशीन आदमी का औज़ार है प्रकृति पर विजय पाने के लिए । मनुष्य ने समुद्र को जीत लिया है, हवा को जीत रहा है । उसने पहाडो को चीर कर फेंक दिया है और नदियों को बाध लिया है । मशीन मनुष्य के वश मे होनी चाहिए । मशीन लाभ के लिए चलेगी तो मनुष्य उसके वश मे हो जाएगा, और वह एक अधी ताकत बन कर किस्मत या भाग्य के वहम को जन्म देगी। किन्तु यदि मनुष्य उसे सामाजिक तौर पर अपने वश मे करके चलाएगा, या मनुष्य मात्र के सुख के लिए चलाएगा तो वह मनुष्य के द्वारा प्रकृति पर और भी अनेक प्रकार की विजय प्राप्त करने का साधन बनेगी । मशीनी युग से प्राचीन युग की ओर मुडना बबरता की ओर मुडना है । मशीनो को तोडना फोडना अपने औज़ारो और सदा की सम्पदा को गवा कर विपन्न होना है । किसान और मजदूर का पैदावार के साधनो पर अपना क़ब्ज़ा करने के लिए लडना, अपने अधिकार के लिए लडना है—और उसम ही सबका सुख है ।"

उस दिन, दस कक्षा तक पढे हुए होने के बावजूद भी, यह बातें उसकी समझ मे नही आई थी जबकि सगठन-बद्ध नितान्त अनपढ मजदूर भी इन बातो को समझते थे । आज उसकी समझ में सब कुछ आ गया था । उसने कहा "फैक्टरी को आग लगाना जहालत है । अकेले-दुकेले काम करना असभव है, और अगर कुछ किया भी जाए तो हुल्लडबाज़ी मे बदल जाता है । लेकिन उस पर विश्वास ही कौन करेगा ?"

वह बहुत दुखी हो गया था । उसने अब बाहर का गेट पार कर लिया था । वह बहुत घबरा गया था । बाहर शीशम के पेड के नीचे घास की तह बिछी हुई देख कर वह लेट गया । उसके पास एक

भी पैसा नही था। वह सुहागवती के और अपने तीन बच्चों के पास कैसे जाएगा? सब कुछ तो वह पाकिस्तान मे लुटा कर यहा पहुचे थे। गाधी भी तो सत्य के लिए आमरण-व्रत रख लेता था। आज उसे अपना सत्य गाधी के सत्य से ऊपर दिखायी दे रहा था। वह उठ कर, अपने मन की दृढता की तरह जम कर बैठ गया।

"कपूर साहब! यहा बैठे हैं?" किसी ने पूछा।

आज "कपूर साहब" नाम पुकारे जाने से उसे चोट-सी लगी। उसने देखा वह तो मजदूरो का साथी था। साथी को आखा से करमचद भीतर से पिघला हुआ दिखायी दिया। वह उसके निकट बैठ गया।

"आपके हमेशा के लिए अपाहिज होने के मुआवज़े की अदायगी हो गयी?"

करमचद चुप रहा।

"आपने मुझे कभी अपना साथी नही समझा?"

करमचद फिर चुप रहा।

"दाल मे कुछ काला है?"

करमचद फिर भी चुप रहा।

"तो क्या मुआवजा नही मिला?"

करमचद ने नही म धीरे से सिर हिला दिया। साथी हैरान हो गया। उसने धीरे धीरे सारी बात पूछ ली। भीतर से आने वाले एक मजदर ने साथी को देखा। साथी ने कुछ कहा। मजदूर अदर चला गया। पाच मिनट मे भीतर से पाच मजदूर आ गए। साथी से पूरी बात सुन कर वह दग रह गए।

"पर साथी करमचदजी हमारे सगठन में नही हैं। हम "

"दुनिया के सब मजदूर भाई भाई हैं।"

पाचो मजदूर अन्दर चले गए। मिनटों में फक्टरी का काम बंद हो गया। मजदूरों ने हड़ताल कर दी थी। जब मैनेजर को स्ट्राइक के कारण का पता लगा तो उसने पाचों मजदूरों को बुलवाया और कहा वह तो सदा आपके खिलाफ रहा है ?"

एक सयाने पंच ने चोट की 'तो हमारे बहाने से ही उसे नमक-हलाली की सजा दी जाएगी ?"

'उसकी तो रिपोर्ट ही दर्ज नहीं है' मैनेजर ने कहा।

'दुर्घटना का कारण आप हैं, और वह हम सबके सामने हुई थी।"

"पर भाई, कानून भी तो कुछ चीज है" मैनेजर ने कहा।

दूसरा पंच बोल उठा "क़ानून आपका है। महकमे आपके हैं। सत्य वह वास्तविकता है जो आंखों के सामने घटे। सो, हम सच्चे हैं और अन्याय के खिलाफ लड़ेंगे।"

"आप लोग हड़ताल न करें। हम विचार करते हैं।"

"हड़ताल जारी रहेगी। हम बाहर जा रहे हैं।' पाचों ने चट्टान जैसी दृढ़ता से कहा।

आप सब कुछ देर के लिए बाहर ही इंतज़ार करें। मैं कपूर साहब से बातचीत करके आप को अभी बताता हूं।"

सैकड़ों मज़दूरों ने करमचंद को घेर लिया। सब उसकी ओर सहानुभूति से देख रहे थे।

बड़ा जुल्म है, बड़ा" एक मज़दूर ने कहा।

'यह है असलियत इन धनी लोगों की' एक और बोला।

करमचंद लज्जित था।

नारे गूंजने आरम्भ हो गए। "मज़दूर एकता, ज़िंदाबाद।'

दस मिनट के अदर-अदर मैनेजर वाहर आ गया । कपूर साहब के लिखित आदेश की एक प्रति पचो को दी गयी। कानून के अनुसार सारी रकम करम चद को मिल जाएगी । पचो ने करमचद के स्वस्थ होने तक सारे खर्चे की अदायगी की उनसे हामी भरवा ली थी ।

फिर नारे लगने शुरू हो गए "मजदूर एकता, जिंदाबाद ।"

करमचद का जोश आ गया । वह पट्टी मे बधा हुआ अपना हाथ स्लिग से निकाल कर, और उसे ऊपर उठा कर, पुकार उठा "दुनिया भरके मज़दूरो "

और सब मजदूर एक स्वर हो तुमुल घोष कर उठे —"एक हो जाओ ।"

भासमुना—वि० 8—144 एम आफ आई ॲण्ड बी (एन बी)/84—9-4-85—3 000